आध्यात्मिक कविताएँ

अरविंद कुमार

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Arvind Kumar 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRoseONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7542-351-5

Cover design: Rohit
Typesetting: Namrata Saini

First Edition: April 2026

समर्पण

अध्यात्म की ओर प्रथम कदम बढ़ाने को प्रेरित
करनेवाले मार्गदर्शक

श्रीमान जगदीश नौडियाल जी को

दो शब्द ...

प्रकृति का प्रत्येक प्राणी परमात्मा का ही अंश कहलाता है जो जीवों में चेतना अर्थात आत्मा रूप में स्थित है। जबतक हमारे जड़ रूपी शरीर में चेतनता है तभी तक इसमें जीवन है। जैसे ही चेतना रूपी आत्मा शरीर से निकल जाती है, शरीर मृत हो जाता है। आत्मा चुकी अविनाशी है, प्राणी के इस जन्म और प्रारब्ध कर्मों के फल के आधार पर पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। यह जन्म-मरण का चक्र तबतक चलता रहता है जबतक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती है अर्थात आत्मा जो परमात्मा का अंश है, अपने पूर्णांश में मिलकर एकाकार नहीं हो जाता है।

विडंबना यह है कि प्राणी (यहाँ पर मनुष्य) प्रकृति में जन्म लेने के पश्चात् इसके त्रिगुणों में फँसकर उलझता चला जाता है। भौतिकता से इस कदर नाता जोड़ लेता है कि उसकी प्राप्ति हेतु कलयुग रूपी कल्मषों से मुक्त नहीं हो पाता है। राग, द्वेष, ईर्ष्या, क्लेश, मोह आदि में उलझकर सम्पूर्ण जीवन बर्बाद कर लेता है। और जबतक उसे ज्ञान होता है तबतक उसका जीवन व्यतीत हो चूका होता है। परिणामतः वह जन्म-मरण रूपी प्रक्रिया से मुक्त नहीं हो पाता है।

जैसे जब जलद बूंद धरती पर गिरती है तो कुछ बूंदें तो पृथ्वी द्वारा ही अवशोषित कर ली जाती है जो बाद में सूर्य की गर्मी से वाष्प बन बादल बनकर पुनः भू पर आने और जाने में ही उलझकर रह जाते हैं। पर कुछ बूंदें धारा रूप में परिवर्तित हो सोतों के रूप में नदियों से मिल जाते हैं जो आगे बढ़कर महासागर में मिल अपना अस्तित्व खो उससे एकाकार हो जाते हैं और आने-जाने की प्रक्रिया से मुक्त हो जाते हैं। वैसे ही धरती पर मनुष्यों का जीवन है। कुछ तो भौतिकता के चकाचौंध में उलझ जन्म-मरण के चक्र में ही फँस जाते हैं। लेकिन कुछ सत्संग, गुरुज्ञान आदि के माध्यम से स्वयं को समझते हैं और इस जन्म-मरण रूपी आवागमन की प्रक्रिया

से मुक्त होने का प्रयास करते हैं। कुछ तो एक जन्म में और कुछ तो कई जन्मों के उपरांत ही सफल हो पाते हैं।

स्वयं का गहन अध्ययन और आत्मा से जुड़ने की प्रक्रिया ही अध्यात्म कहलाती है जिसके माध्यम से स्वयं के अस्तित्व के अर्थ की खोज की जाती है। वस्तुतः अध्यात्म हमें भौतिकता से परे जाकर आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को समझने एवं शांतिपूर्ण और सुखद तरीके से जीवन जीने की ओर ले जाता है। आनंद का वास्तविक स्रोत तो अपने अंदर ही है और हम उसे बाहर भौतिक दुनिया में तलाशते रहते हैं। पर उस शाश्वत आनंद की प्राप्ति के लिए हमें स्वयं को केंद्रित कर अंदर की ही यात्रा करनी पड़ेगी। अध्यात्म आत्मा से सम्बंधित एक ऐसी आंतरिक यात्रा है जो हमें सांसारिक बंधनों से मुक्त करती है और इस लायक बना देती है कि हम परमात्मा को सर्वत्र एवं सभी जीवों में समान रूप से देख सकें। अध्यात्म हमें अपने शाश्वत मूल्यों, जैसे सत्य, न्याय, कर्तव्यनिष्ठा आदि, को अपनाने और नकारात्मक विचारों से बचने की प्रेरणा देता है। अध्यात्म के मार्ग पर चलकर मनुष्य स्वयं का उद्धार कर सकता है। इसके लिए श्रीमद भगवद गीता में तीन मार्ग (ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग) बतलाये गए हैं। किसी भी एक मार्ग का पालन कर स्वयं का कल्याण किया जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक "आध्यात्मिक कवितायेँ" में उन सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है जो हमें अध्यात्म की ओर ले जाने में सहायता प्रदान करता है।

अरविन्द कुमार

प्रेरणास्रोत

मनुष्य का आगमन जब इस पृथ्वी पर होता है तो वह कच्चे मिट्टी के सामान होता है और यहाँ उसका जिस वातावरण में परवरिश की जाती है, उसका जीवन भी मुख्यतः उसी प्रकार का होता है। अर्थात उसकी मानसिक स्थिति, अंतर स्थित संस्कारें, आत्मसम्मान आदि भी वैसा ही होता है। लेकिन अगर कोई सही मार्गदर्शन मिले तो जीवन की किसी भी अवस्था में हम अपने आप को परिवर्तित कर सकतें हैं।

मेरा जीवन भी प्रकृति के त्रिगुणों के प्रभाव में रहकर गुजर रहा था। निश्चित रूप से इसके गुण और अवगुण से अछूते नहीं थे। अचानक इसमें एक मोड़ तब आया जब अबुधाबी में सेवाकाल के दौरान जनवरी 2015 में अपने कुछ मित्रों के माध्यम से एक सत्संग समूह "गीता परिवार अबुधाबी" से जुड़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सत्संग सप्ताह में एक दिन सप्ताहांत में आयोजित किया जाता था। यहाँ गीता पाठ के अतिरिक्त भजन-कीर्तन एवं भक्तिमय प्रवचन होता था। इस सत्संग में जुड़ने से पहले मैं श्रीमद भगवद गीता का कभी ध्यान से पढाई नहीं किया था और उसे जीवन में उतरने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।

सत्संग प्राप्ति के पश्चात् एक अद्भुत सकारात्मक परिवर्तन आने लगा। शनैः-शनैः गीता पथ में आनंद आने लगा। पुनः श्रीमद भगवद गीता की पुस्तक खरीदी और तन्मयता से उसे पढ़ने और समझने का प्रयास करने लगा। गीता तो दिव्य ज्ञान का अद्भुत खजाना और मानव जीवन का संविधान है। भगवान ने अर्जुन को वो सब ज्ञान दिया जिससे वे त्रिगुणातीत हुए, इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों पर पूर्ण नियंत्रण हुआ, भौतिकता के मोहजाल से निकल अपने कर्तव्यपथ पर आगे बढे।

सत्संग संचालक आदरणीय श्रीमान जगदीश नौडियाल जी हैं जो भगवद गीता और आध्यात्मिक ज्ञान पर बहुत अच्छी पकड़ रखते हैं। सत्संग में उनके द्वारा दिए गए प्रवचन काफी प्रभावशाली एवं प्रेरणादायक होते हैं

जो किसी के लिए भी आध्यात्म के पथ पर बढ़ने के लिए प्रेरणास्रोत हो सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक "आध्यात्मिक कवितायेँ" लिखने की प्रेरणा भी श्री जगदीश नौडियाल जी द्वारा आध्यात्मिक विषयों पर व्यक्त किये गए विचारों से ही मिली है। सत्संग में गीता परिवार के अन्य सदस्यों एवं अतिथि वक्ता ज्ञान विशारद श्रीमान बजरंगी पांडे जी द्वारा व्यक्त किये गये विचार भी सकारात्मक उत्प्रेरक का काम किये हैं।

सत्संग समूह "गीता परिवार अबुधाबी" के सभी सदस्यों का मैं आजीवन आभारी रहूगां जो कल्मष युक्त कलयुग में ज्ञान का ज्योत जला रहे हैं। सत्संग चलता रहे यही मेरी कामना है।

अरविन्द कुमार

नमन

प्रथम नमन सृष्टिकर्ता को, जिननें रची यह सृष्टि,
कृपा सिंधु करुणा के सागर, कर कृपाकी वृष्टि ।
अनंत योनियों में दुर्लभ, मानव योनि भी उसमें,
जहाँ श्रमसे परममोक्ष को, पा सकता वो जिसमें ।

नमन माता-पिता को, लानेको जगमें निमित्त बनें,
अपनी क्षमताके अनुसार वे, प्रथम मार्गदर्शक बनें ।
जो कुछ भी है पास हमारे, सबकुछ उनकी सीख,
ममता, प्यार का सागर नहीं, कोई उनके सरीख ।

पुनः नमन गुरु मनीषियों को, पाया जिनसे ज्ञान,
घोर तिमिर से भरे पथ में, रौशनी किया प्रदान ।
अन्दर भरे कल्मषों से, मुक्ति का मार्ग दिखाया,
कैसे मोक्ष को प्राप्त हों, सार्थक मार्ग बतलाया ।

फिर नमन उन मित्रों को, जो पथमें बनें सहायक,
कठिनतम परिस्थितियों मेंभी, सही सलाहके दायक ।
सदाचारी, विश्वास पात्र रहे, मदद को हरदम तत्पर,
मेरी गलती बताने में भी, हिचके नहीं तनिक भर ।

नमन और उन सबको भी, मिले जो जीवनपथ में,
अपने ज्ञानकी ज्योतिसे गिरने नहीं दिया कुपथ में ।
अनिश्चितता की अवस्था में स्थिरता का दिया ज्ञान,
कर्तव्य पूर्ति ही तेरा लक्ष्य, स्वयं को तुम पहचान ।

---------o--------

विषय-सूचि

1. अध्यात्म 1
2. आत्मा 9
3. आत्मज्ञान 14
4. अहंकार 22
5. संयम 28
6. मन 34
7. मुक्ति 42
8. कर्म 51
9. कर्मफल 57
10. जीवन चक्र और मोक्ष 65
11. पिता 71
12. सुख-दुख 80
13. विकास या विनाश 88
14. धर्म 97
15. गुरु, शिक्षक और अध्यापक 106
16. राम नाम की महिमा 109
17. सफर 114
18. राजा राम, रामराज्य और श्रीराम 120
19. भगवान की विभूतियाँ 133
20. रावण और आज 139
21. दीपक 146
22. जिन्दगी 150
23. भज गोविन्दम् 153

24. शांति......171
25. पतझड़......178
26. जीवन के सत्य......183
27. शिव भजन......186
28. कृष्ण भजन - 1......188
29. कृष्ण भजन - 2......190
30. कृष्ण भजन - 3......192
31. भक्ति भजन -1......194
32. भक्ति भजन -2......196
33. जीवन......198
34. पहचान......201
35. क्रोध......203
36. कवि परिचय......210

अध्यात्म

अध्यात्म क्या है? जीवन में, इसकी क्या आवश्यकता ?
जीवन में लाती कैसे यह, शाश्वत शांति और स्थिरता ?
दृश्य जगत, जो हो रहा दृष्टिगत, उद्वेलित और अशांत,
मानव, सृष्टि की अनुपम रचना, दिख रहा पूर्ण क्लांत ।

आज जगत का मानव सब, प्राकृत पदार्थों में लिप्त है,
जिसे प्राप्ति हेतु, जीवन पर्यन्त, होता रहता विक्षिप्त है ।
परिवर्तनशील सांसारिक पदार्थों में ढूंढता रहता शान्ति,
जीवन गुजर जाता सम्पूर्ण, मिलता उसे केवल भ्रान्ति ।

तृप्ति, शांति प्राप्ति को नर ढूंढता फिरता डगर-डगर,
न जाने कैसी वस्तु है वह, दिख नहीं पाती एक नजर ।
कुछ पदार्थ की प्राप्ति से, मन कुछ देरको होता शांत,
कुछ पल पश्चात् पुनः मन, होने लगता अशान्त-क्लान्त ।

नए पदार्थ की प्राप्ति को वह करने लगता पुनः प्रयास,
शायद उसी में मिले शांति, लेकर मनमें एक नव आस ।
एकके बाद एक करते-करते, जाती संपूर्ण जिंदगी गुजर,
पर शांति तो मिलती नहीं और चला जाता मानव उपर ।

पदार्थ, क्रिया, संकल्प, सबके सब नश्वर, परिवर्तनशील,
ये आज हैं, कल नहीं रहेंगें, हो जायेगें सब सृष्टि में लील ।
नश्वर पदार्थों से प्राप्त नहीं होती कभी भी शांति शाश्वत,
पर उसी में ढूंढते रहते हम, शांति सदैव जीवन पर्यन्त ।

शांति तलाशने से पहले, मैं स्वयं क्या हूँ? जानना होगा,
इसके बिना हर तलाश शांति का निपट निरर्थक होगा ।
पंच - महाभूतों से निर्मित होती है जीवों की स्थूल काया,
जीवन इसमें आती तभी जब चेतनता से संगम हो पाया ।

जिस परा शक्ति से आती चेतनता, कहलाती है आत्मा,
जो साक्षी है, सबका द्रष्टा है और शाश्वत अंश परमात्मा ।
जीवन जभी तक कायामें, होती जबतक स्थित है आत्मा,
स्थूल काया मृत हो जाती, निकल जाती जब यह आत्मा ।

आत्मा पूर्ण है, मुक्त है, तथा कोई बंधन नहीं इसका होता,
यह चैतन्य है, निस्पृह है, असंग है, नहीं कर्ता यह होता ।
चैतन्य आत्माकी अभिव्यक्ति, विभिन्न रूपों में दिखाई देती,
सृष्टि में आकर आत्मा यह, प्रकृति के संसर्ग में आ जाती ।

त्रिगुणातीत आत्मा यह, प्रकृति के त्रिगुणों में फँस जाता है,
सत, रज, तम त्रिगुणों का, प्रभाव उसपर पड़ने लगता है ।
पंचभूत निर्मित मनुष्य फिर होने लगता उस तरफ आकृष्ट,
उसे प्राप्त करने के धुन में, होने लगता शनैः शनैः निकृष्ट ।

सभी प्रकार के सुख-साधन, सांसारिक पदार्थों में खोजता,
जीवन की उसी में परम शांति, ऐसा वह सोंचने लगता ।
लेकिन प्राकृत पदार्थों से, शांति किसी को मिली है क्या ?
एक-बार प्राप्त हो जाने पर, दूसरी इच्छा नहीं जगती क्या ?

मन बड़ा ही चंचल, बलवान, आत्मा पर हावी हो जाता है,
और उसे, उसके मूल रूपमें, जाने में बाधा बन जाता है ।
मन, जो इन्द्रियों का स्वामी, उसे विषयों में लगाए रखता,
और स्वयं भी उन विषयों में, अपने आनंदको वह ढूंढता ।

आत्मा भी उसके संग हो, विषयों से निर्लिप्त नहीं रहता,
शनैः शनैः वह भी उसी गहन दलदल में है फँसता जाता ।
यदा-कदा आत्मा को जब, अपने स्वरुप का अनुभव होता,
कुछ पल उसे लगता भटक गया, पुनः उसी में खो जाता ।

विषयों के सेवन से अन्तर में, विकार उत्पन्न हो जाता है,
ईर्ष्या, द्वेष, मद, मोह, क्लेश, आदि में फँस वह जाता है ।
अपने लिए सुख के साधन जोड़ने में जीवन खो देता है,
पर स्वयं क्या है? चाहिए क्या? समझ नहीं वह पाता है ।

इसलिए जरुरी सबसे पहले, जीवन में स्वयं को जानना,
उसका वास्तविक स्वरूप क्या?जरुरी इसको पहचानना ।
चेतना या आत्मा के बिना, जड़ स्थूल काया कुछ भी नहीं,
चेतनता है तो जीवन है, वरना यह जीवन कुछ भी नहीं ।

शरीर हमारा जो जड़ है, सतत परिवर्तनशील और नश्वर,
चेतना जो हमारी आत्मा है, सदैव अविनाशी और अक्षर ।
शरीर का सम्बन्ध संसार से, शनैः शनैः क्षीण होते रहता,
आत्मा, जो परमात्मा का अंश, सदैव एक सा ही रहता ।

पहले मनुष्य समझे यह, वह शरीर नहीं, एक चेतन आत्मा,
शरीर तो एक दिन मिट जायेगा, अमिट रहेगा यह आत्मा ।
मृत्यु के उपरांत यह आत्मा, एक नव शरीर धारण करता,
अगर कर्म निष्काम, तो मिलता मोक्ष, परमात्मा से मिलता ।

वर्तमान में मनुष्य मुख्यतः, सकाम कर्मों में उलझा रहता,
और इसलिए वह जीवन-मृत्यु के, चक्र सदा फँसा रहता ।
मनुष्य इस अविनाशी आत्मा को समझने का करे प्रयास,
इसके जानने-पहचानने के, पथका करे वह सतत विकास ।

जहाँ से मनुष्य स्वयं को, जानने का शुरुआत वह करता,
वहीं से उसके जीवन में शुभ, आरम्भ अध्यात्म का होता ।
खुद को जानना, ईश्वर को पहचानना, अध्यात्म का लक्ष्य,
जाना नहीं कहीं इसके लिए, पर खुदको पहचाने मनुष्य ।

आत्मा के अनुसन्धान के, विज्ञान को कहते हैं अध्यात्म,
ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति, करने का मार्ग है अध्यात्म ।
जिस विद्यासे मनुष्य का होता कल्याण, कहलाता अध्यात्म,
आत्मा में जो स्थिर भाव हैं, वही कहलाता है अध्यात्म ।

अध्यात्म व्यक्ति को स्वयंके अस्तित्व के साथ है जोड़ता,
और स्वयं का सूक्ष्म विवेचन करने में समर्थ पूर्ण बनाता ।
जिस शांति और आनंद को, मनुष्य तलाशता सदा बाहर,
वास्तव में वह तो छुपा बैठा, सभी मनुष्यों के ही अंदर ।

भूल जाता वह स्वयं हीं है, अपने दिव्य आनंद का स्रोत,
अज्ञानतावश वह जागृत नहीं, करपाता पावन दिव्य स्रोत ।
शांति प्राप्ति हेतु हमें छोड़ना, होगा वाह्य जग का सफर,
और स्वयं को केंद्रित कर, झाँकना होगा खुद के अंदर ।

गीता अनुसार यह आत्मा मनुष्य के, अंदर ह्रदय में स्थित,
और मनुष्य के जीवनको, संचालित कर करता व्यवस्थित ।
अध्यात्म में मूल रूप से, ज्ञान का मतलब होता आत्मज्ञान,
जिस ज्ञान की प्राप्ति के बाद, शेष रहता नहीं कोई ज्ञान ।

आत्माही मनुष्य का वास्तविक स्वरुप, शेष सब उसके दास,
यह शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, सब अनुचर उनके खास ।
आत्मा को जानने हेतु, संसार से सम्बन्ध, सभी तोड़ने होगें,
संसार के प्रति आसक्ति जो, उसे पूर्णतः हमें त्यागने होगें ।

अर्थात विवेक द्वारा विषयों के, बंधन से पाना होगा मुक्ति,
आंतरिक विकारी प्रवृतियों से, रखना होगा नहीं अनुरक्ति ।
मन, जो कल्मषों से भरा, उसे रिक्त पूर्णतः करना होगा,
ऐसा करने से मुमुक्षु में, सही पात्रता फिर उत्पन्न होगा ।

फिर एक ज्ञानी गुरु करे, आत्मज्ञान प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त,
मुमुक्षा, पात्रता, गुरु के त्रिसंगम से होने लगेगा ज्ञान प्रकट ।
इस आत्मज्ञान से सुषुप्त चेतना का होने लगेगा अनावरण,
अनुभव होता, मैं सिर्फ आत्मस्वरूप हूँ, नहीं कोई मैं तन ।

अनुभूति होती मैं आत्मा हूँ, और उसी भाँति दिव्य शांत,
प्राप्ति संतुष्टि, आनंद की होती, जो है अति अगम प्रशांत ।
जिस मार्गसे चलकर इसे पाये, वही मार्ग तो अध्यात्म है,
चलकर जिसपर अंतरका, सभी विकार होजाता खत्म है ।

अध्यात्म मार्ग पर चल मानव, कर सकता खुद का उद्धार,
स्थित हो अपने मूलस्वरुप में, कर सकता वो वैतरणी पार ।
मनुष्यमात्र में, विचारशक्ति के रूप में स्थित दिव्य सौगात,
जिसे जागृत कर मनुष्य, मोक्ष, मुक्ति को कर सकता प्राप्त ।

ज्ञानयोग द्वारा विचारशक्ति से, जड़ चेतन का कर अलगाव,
जड़ तज, अपने स्वरुप में स्थित, हो जाता वह महानुभाव ।
भक्तियोग में विचारशक्ति से ही ईश्वर से बनाकर सम्बन्ध,
मैं भगवान का और भगवान मेरा, बना तोड़ता बंधन फंद ।

कर्मयोग में साधक उसी विचारशक्ति का उपयोग करके,
पंचतत्व निर्मित तन, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि को मान जगत के ।
जगत की सेवा में लगा, सम्बन्ध विच्छेद सबसे कर लेता,
और अपने स्वरुप में स्थित हो, उद्धार स्वयं का कर लेता ।

अध्यात्म ही केवल एक मार्ग, शाश्वत शांति के प्राप्ति का,
दृश्य जगतमें चाहिए अपनाना, सभीको तज आसक्ति का ।

---------o--------

आत्मा

पंच - महाभूत से बनी, यह है जो स्थूल काया,
मन, बुद्धि और अहंकार, भी इसमें है समाया ।
ये आठ प्रकार की भेदोंवाली होती अपरा प्रकृति,
सृष्टि के सब जड़ पदार्थ, इनसे ही निर्मित होती ।

जड़ अपनी जड़ता के कारण स्वयं नहीं कुछ होता,
महत्वहीन रहता यह जब-तक चेतनता नहीं आता ।
जड़ अपरा प्रकृति में दिव्य, परा प्रकृति जब आती,
तब महत्वहीन जड़ अपरा में, चेतनता आ जाती ।

जड़ में यह चेतनता ही जड़ की आत्मा कहलाती,
चेतनता आने से जड़ में, तत्क्षण गतिशीलता आती ।
चेतना रूप दिव्य आत्मा ही, प्राणी का मूल आधार,
जब-तक रहती गतिशीलता, तब-तक प्राणी साकार ।

स्थूल शरीर और चेतन आत्मा, का प्राणी एक संगम,
एक दृश्य और एक अदृश्य का, अद्भुत एक समागम ।
शरीर है एक दृश्य आत्मा और आत्मा अदृश्य शरीर,
इस संगम को समझ जोपाया, वही पूर्ण ज्ञानी फ़क़ीर ।

अनेकों शास्त्र, पुराणों में, इस आत्मा का है विवरण,
जानें, वे कहते क्या ? और करते क्या इसका वर्णन ।
अदृश्य आत्मा संग दृश्य शरीर, पाता विभिन्न अवस्था,
जन्मोपरांत वाल्यावस्था, युवावस्था, फिर पाता वृद्धावस्था ।

शरीर के मरणोपरांत परभी, यह आत्मा नहीं है मरता,
नव शरीर धारण करता और, उसी में जा वह वसता ।
यह शरीर होता असत है, न होती जिसकी कोई सत्ता,
पर आत्मा तो होता सत है, रहती सदा इसकी महत्ता ।

यह सत आत्मा अविनाशी, नहीं होता कभी यह नष्ट,
यह अव्यय है, अनश्वर है, तथा शाश्वत, होता नहीं विनष्ट ।
सम्पूर्ण जगत-दृश्यवर्ग यह, नित्य आत्मा का है विस्तार,
भौतिक जगत के सभी प्राणियों, का यह शाश्वत आधार ।

आत्मा नहीं होता मारनेवाला, और नहीं हीं मरनेवाला,
इस अविनाशी तत्व को कोई, नहीं हीं है मारनेवाला ।
आत्मा न कभी लेता है जन्म, और नहीं मरता कभी,
आत्मा या तो होता है, या नहीं होता है, सत्य यही ।

यह आत्मा है अविनाशी, शाश्वत, अव्यय और अजन्मा,
अनित्य मार सकता नहीं, क्योंकि नित्य है यह आत्मा ।
पुराने वस्त्रों को तज मानव, करता नव वस्त्र धारण,
आत्मा भी तज जर्जर तनको, करता नव तन धारण ।

अग्नि इसे झुलसा नहीं सकता, शस्त्र नहीं काट सकता,
जल भी आद्र न कर सकता, पवन भी वहा न सकता ।
न तो इसको तोड़ा जा सकता, नहीं घुलाया जा सकता,
न तो इसे जलाया जा सकता, नहीं सुखाया जा सकता ।

यह आत्मा शाश्वत, सर्वव्यापी, अविकारी और स्थिर,
सदैव एक सा रहनेवाला, यह आत्मा नित्य -निरन्तर ।
यह आत्मा कल्पना से परे है, न होता इसमें परिवर्तन,
स्वभावतः यह अव्यक्त है, तथा नहीं ये विषये-चिंतन ।

भाँति- भाँति के लोग इसे, अलग- अलग तरह से देखते,
कुछ महापुरुष इस आत्मा को, आश्चर्य की भाँति देखते ।
दूसरे महापुरुष करते इसका, आश्चर्य की भाँति वर्णन,
अन्य अधिकारी पुरुष करते, आश्चर्य की भाँति श्रवण ।

कोई-कोई तो सुनकर भी, इसको नहीं कुछ जानता,
और यह आत्मा शरीर में, अवध्य सदैव ही रहता ।
आत्मा परमात्मा का अंश, जीवों के ह्रदय में स्थित,
देख इसे सकते केवल वह, ज्ञानी जो योग में स्थित ।

आत्मा साक्षी है, द्रष्टा केवल, और यह सबको देखता,
तुम्हारा होना ही इसका होना, इसको न कोई देखता ।
शरीर स्थित यह आत्मा, नहीं होता देह का कर्ता,
और नहीं इसके द्वारा कोई, कर्म ही सम्पन्न होता ।

आत्मा व्यापक है, इसे सिमित, किया नहीं जा सकता,
किसी मान्यता, परिभाषा में, नहीं कैद किया जा सकता ।
आत्मा एक है, समस्त जीवों में, एक ही आत्मा वसता,
विभिन्न जीवों में अज्ञानता से, भिन्न-भिन्न है यह दीखता ।

आत्मा मुक्त है, अर्थात इसका, कोई बंधन नहीं है होता,
तन-मन के कारण, आत्मा का भी, बंधन प्रतीत है होता ।
आत्मा चैतन्य है, सम्पूर्ण सृष्टि, इसकी ही है अभिव्यक्ति,
यही चैतन्य, विभिन्न रूपों में, सृष्टि में दिखायी है पड़ती ।

क्रिया रहित होने के कारण, कर्ता नहीं कभी यह होता,
इसकी मात्र उपस्थिति से ही, सब कुछ सम्पन्न हो जाता ।
आत्मा असंग है, इसका कोई, साथी, परिवार नहीं होता,
यह अकेला, सर्व-गुण-सम्पन्न, न द्वेष, न प्रेम ही करता ।

आत्मा निस्पृह है, इसकी कोई, इच्छा, अपेक्षा नहीं होती,
आत्मा शांत समुद्र समान, तरंगें नहीं इसमें कोई उठती ।
आत्मा न तो कभी प्रसन्न होता, और न क्रोधित ही होता,
और नहीं कभी भी सांसारिक, कार्यों में लिप्त हीं होता ।

यह संसार उसी आत्मा की है, केवल एक अभिव्यक्ति,
घटित समस्त घटनायें होती, उस आत्मा की ही शक्ति ।
आत्मा का न कोई वर्ण, न आश्रम और न कोई जाति,
नहीं यह कर्ता, न ही भोक्ता और ना भोग्य-विषय होती ।

आत्मा तो मात्र ऊर्जा चैतन्य, सभी जीवों में सम व्याप्त,
आत्मज्ञान की प्राप्ति बाद ही, होता सब संशय समाप्त ।
जान आत्मा को, आत्मज्ञान जब, कोई मनुष्य कर जाता,
निश्चित ही, संशय-रहित वह, मोक्ष को प्राप्त कर जाता ।

---------o--------

आत्मज्ञान

अध्यात्म में आत्मज्ञान होता, सदा आत्मा का ज्ञान,
आत्मसात किया जिसने इसको, पूर्ण वही विद्वान ।
आत्मज्ञान जानने से पहले, जाने क्या होता आत्मा,
कैसे जीवों के जीवन को, करता संचालित आत्मा ।

आत्मा, परमात्मा का अंश, हर प्राणी में विद्धमान,
स्थूल रूप जड़ काया में, चेतनता रूप प्रमाण ।
आत्मा असंग है, निस्पृह है, न होता इसका कोई वर्ण,
यह न कर्ता, नाहीं भोक्ता, न भोग्य-विषय किसी क्षण ।

आत्मा साक्षी है, व्यापक है, ब्रह्म की भाँति हीं पूर्ण,
आत्मा मुक्त है, चैतन्य है, अभिव्यक्ति सृष्टि सम्पूर्ण ।
आत्मा एक जीवित प्राणी का, होता निराकार सार,
यह अरूप, अवध्य, अविनाशी, शाश्वत और निराकार ।

आत्मा अमर है, इसकी कोई, जन्म-मृत्यु नहीं होती,
यह एक ऊर्जा स्वरुप, ज्ञानिओं को परिलक्षित होती ।
इस असत शरीर में आत्मा हीं, केवल होता है सत,
यह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य और परम शाश्वत ।

जीवात्मा जड़ काया में, पाता है भिन्न-भिन्न अवस्था,
मरणोपरांत जर्जर तन से जा, नव तन में जा वसता ।
कैसे आत्मा एक तन से जा, दूसरे तनमें जा वसता,
केवल ज्ञानी ही सकते देख, अज्ञानी देख न सकता ।

उपरोक्त के अतिरिक्त भी, आत्मा के अनेक विभूति,
अनित्य स्थूल काया समर्थ, नहीं करने को प्रस्तुति ।
जो मनुष्य इस आत्म-तत्व का, पाता है ज्ञान विशेष,
सृष्टि में उसे जानने को तब, रहता नहीं कुछ शेष ।

आत्मज्ञान समझने के पूर्व, तोडना होगा मिथ्या भ्रम,
मनुष्य केवल शरीर मात्र नहीं, बल्कि आत्मा चैतन्य ।
आत्मा उसका वास्तविक स्वरुप, शेष सब उसके दास,
शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार सब, अनुचर उनके खाश ।

आत्मा के ज्ञानाभाव वश भ्रान्ति, होती हम सिर्फ शरीर,
न अग्नि, न वायु, न आकाश, न धरती और नहीं नीर ।
पांच तत्वों से बना मनुष्य, नहीं यह केवल मात्र शरीर,
ये पंच महाभूत स्वयं अनित्य, नष्ट होना इनकी तकदीर ।

ये अनित्य पंच-तत्व मृत्यु के, पश्चात् हो जाते सब नष्ट,
लेकिन यह आत्मा रहता जीवित, और नहीं होता नष्ट ।
मृत्य तन को छोड़ यह बढ़ता, अपनी अगली यात्रा पर,
एक नयी यात्रा करता प्रारम्भ, नवीन बदन धारण कर ।

स्थूल जड़ काया वस्त्र मात्र, जिसका करता वह धारण,
जर्जर हो जाने पर तज इसको, नव तन करता धारण ।
भौतिक पदार्थों से बना शरीर यह, होता उसका घर,
आता, ठहरता, आगे बढ़ता यह, मृत्यु-पश्चात् तज कर ।

जीवों में वाश करनेवाला यह, होता द्रष्टा, साक्षी, चैतन्य,
सम्पूर्ण सृष्टि का पूर्ण आधार, होता यही नित्य, चैतन्य ।
मनुष्य यहीं पर करता भूल, समझ नहीं पाता अन्तर,
शरीर को ही सम्पूर्ण मान वह, बढ़ता रहता निरंतर ।

संसार और यह आत्मा जो, एक बाहर, एक अन्दर,
बाहर अनित्य संसार है और, नित्य आत्मा है भीतर ।
दोनों मार्गों की दिशा होती है, एकदम निरा विपरीत,
एक अगर उत्तर जाता तो, दूसरा दक्षिण जाता प्रतीत ।

दोनों मार्गों के मध्य खड़ा, सदा असमंजस में मानव,
किस पथ का वह करे चुनाव, समझ न पाता मानव ।
यही परिवर्तनकारी विन्दु, बदलता जहाँ से जीवन,
कदम बढ़ेगें जिस दिशा, उसी पथपर करेगें भर्मण ।

अगर मनुष्य संसार के पथपर, लगता है वह चलने,
निश्चित ही उसकी दुरी तब, आत्मा से लगती बढ़ने ।
आत्मा, जो परमात्मा स्वरुप, से बढ़ने लगती नित दूरी,
पुनः आत्मा को जाते भूल, ज्ञान जिसका बहुत जरुरी ।

संसार रूपी सृष्टिमें रच-वस, हो जाते उसमें आसक्त,
और नतीज़तन कर्मजाल के, बंधन में जाते सब फँस ।
संसार के प्रति आसक्ति हीं, बनता बंधन का कारण,
जो आत्मज्ञान की प्राप्ति में, बनता विघ्न का कारण ।

अगर मनुष्य आत्मा की ओर, जाने को रखता पथ,
तो उसे सांसारिक मार्ग का, त्यागना होगा निज पथ ।
और उसे संसार से करना, होगा सम्बन्ध विच्छेद,
नहीं तो आत्मज्ञान प्राप्ति का, रहेगा मार्ग अभेद्य ।

संसार के प्रति आसक्ति का, करना होगा उसे त्याग,
तभी वह ज्ञान प्राप्ति का, अधिकारी बनेगा महाभाग ।
संसार विमुख होने का अर्थ, नहीं जगत को छोड़ना,
और नहीं निज कर्तव्यों से, अपने मुख को मोड़ना ।

बल्कि विवेक द्वारा विषयों का, जो बंधन का कारण,
असीम दुःख का कारण समझ, पाना उससे निवारण ।
सभी प्रकार के विषयों में, पूर्णतः अनिच्छा हो जाना,
और उसमें व्याप्त संग-दोष से, पूर्ण निवृत हो जाना ।

भोग-वृति, अनित्य वस्तुओं से, करना उसका त्याग,
विकारी-वृतियों के प्रति नहीं, रखना होगा अनुराग ।
आत्मज्ञान के प्राप्ति मार्ग में, आती बहुधा बाधाएँ,
समझना होगा पहले कैसे, इन विघ्नों को निपटायें ।

सबसे बड़ी बाधा मनुष्य में, मुमुक्षा का नहीं होना,
अर्थात ज्ञान की प्राप्ति में, इच्छा का भी नहीं होना ।
ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में, दृढ संकल्प होना आवश्यक,
इसके अभाव में साधक, प्रयत्न नहीं करता भरसक ।

और अपना कीमती समय वह, नष्ट रहेगा यूँ करता,
अंत समय में अपना खाली, हाथ रहेगा वह मलता ।
दूसरी बाधा मनुष्य में होना, सही पात्रता का अभाव,
इसके कारण मनुष्य पर, ज्ञान का होता नहीं प्रभाव ।

संसार से आसक्ति के कारण, विषयों से रहता युक्त,
मोह, माया, राग, ईर्ष्या, द्वेष से, होता नहीं कभी वह मुक्त ।
कषाय कल्मषों से उसका मन, सदैव भरा ही रहता,
ज्ञान के लिए कुछ भी स्थान, उसमें बचा न रहता ।

जबतक कल्मषों को फेंक, मनको खाली नहीं करेगा,
तबतक ज्ञान की सुरसरि को, वह कैसे उसमें भरेगा ।
अतः मनुष्य को, पहले स्वयं को, खाली करना होगा,
संसार से जुड़े संबंधों को उसे, पूर्णतः त्यागना होगा ।

ऐसा करने पर अधिकारी वह, होगा ज्ञान प्राप्ति का,
विकसित पात्रता मार्ग प्रशस्त, करेगा सिद्धि प्राप्ति का ।
सही पात्रता के लिए मुमुक्षु, होना बहुत जरुरी,
प्रखर प्रज्ञा, श्रद्धा, समर्पण, नम्रता से रखें न दूरी ।

आत्मज्ञान प्राप्ति के मार्ग में, ज्ञानी गुरु अति आवश्यक,
साधक को सही मार्ग दिखाने, में बने जो पथ-प्रदर्शक ।
ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु की, होती सदैव अनिवार्यता,
मार्ग में आये बाधा-विघ्नों को, अपने ज्ञान से काटता ।

मंजिल हमारे सामने रहती, पर नहीं दिखायी है पड़ता,
क्योंकि हमारे आखों पर हीं, पर्दा जो पड़ा है रहता ।
आत्मा जो निर्वस्त्र है, साक्षी है, द्रष्टा है, हमारे समक्ष,
पर हममें इतनी क्षमता नहीं, देखने को उसे प्रत्यक्ष ।

देखने की क्षमता साधक में, सद्गुरु ही उत्पन्न करता,
सुदृष्टि देकर, या बोध कराकर, उसे अनावृत करता ।
सद्गुरु होना ऐसा चाहिए, जिसे प्राप्त हो कुछ ज्ञान,
अज्ञानी गुरु पथ से भटका, नहीं देगा सही अन्जाम ।

आत्मज्ञान पाने के मार्ग को, गुरु ही करता प्रशस्त,
पर साधक को मुमुक्षा स्वयं में, करनी होगी जागृत ।
मुमुक्षा, पात्रता तथा सद्गुरु, तीनों का होता जब संगम,
अद्भुत घटना होती घटित, चेतना का होता अनावरण ।

साधक को अनुभव होता तब, मैं सिर्फ आत्म स्वरुप हूँ,
निर्दोष हूँ, स्वयं बोध हूँ, आत्मा की भाँति ही शांत हूँ ।
बोध हो जाता, मैं आत्मा हूँ, यह देह मुझी से प्रकाशित,
इसी चैतन्य तत्व से सारा, जगत भी हो रहा प्रकाशित ।

मोहवश जिसे कहता था अपना, विल्कुल मेरा नहीं है,
सबकुछ ईश्वर का, आत्मा से, पृथक कुछ भी नहीं है ।
मोह, ममता, तृष्णा, आकांक्षा, अपेक्षा और अहंकार,
भ्रम की तरह सब होते दूर, रहता नहीं कोई विकार ।

---------o--------

अहंकार

अहंकार सुनकर मन में हो जाती अजीब विरक्ति,
जिसके साथ हो अहंकार कैसा होगा वह व्यक्ति ।
अजब गजब सी धारणाएं बनने लगती तब मन में,
डर-भय मिश्रित कम्पन, फिर उठने लगती बदन में ।

जब कोई व्यक्ति जग में होता, अहंकार से परिपूर्ण,
तब उसकी बुद्धि- विवेक, हो जाती खण्ड-खण्ड चूर्ण ।
सत्य सुनने की कोई क्षमता, नहीं होती उस इन्सान में,
श्रद्धा निरन्तर कमती जाती, उसकी परम भगवान में ।

अहंकार, दर्प, अभिमान, दम्भ, मद, घमण्ड कई नाम,
नाम कोई हो, पर व्यक्तित्व को, कर देता बदनाम ।
अहंकारी व्यक्ति का ज्ञान, होता है सदा निरर्थक,
ज्ञान का करता उपयोग तो, होता सदैव अनर्थक ।

अहंकार में लोग सदैव ही, रिश्तों को जाते हैं भूल,
अहंकार ही होता है, बिन बात की कलह का मूल ।
वेकार के झगड़ों का करण, होता अक्सर अहंकार,
और एकदिन उसके पतन का, कारण होता अहंकार ।

इतिहास साक्षी है अहंकारियों का होता सदा पतन,
कौरव, रावण या कंस, किसी का भी लें उदाहरण ।
अहंकार से ग्रसित हो विश्वविजय को चला सिकंदर,
सपने रहे अधूरे, वापस पहुँचे नहीं घर के अन्दर ।

नाव भी तैरती तब-तक, जब-तक भरा न उसमें पानी,
वही नाव फिर लगती डूबने, भरने लगता जब पानी ।
वैसे ही मनुष्य में जैसे - जैसे, बढ़ने लगता अहंकार,
वैसे - वैसे जीवन की नाव भी, डूबने लगती मंझधार ।

यह अहंकार जो मनुष्य के, जीवन में भरता जहर,
बीमारी जो जीवन पथ को, डालती विनाश के डगर ।
इस अहंकार को हम सभी, समझने का करें प्रयत्न,
इसके कारण और बचने के, उपाय पर करें मनन ।

प्रकृति से उत्पन्न होते हैं, सत्व, रज और तमो गुण,
अविनाशी देहि को देह में, बांध देते ये तीनों गुण ।
मैं शरीर हूँ और शरीर मेरा है, देहाभिमान हो जाता,
प्रकृति के सम्बन्ध से ही, सभी विकार पैदा है होता ।

रजोगुण, कर्मों की आसक्ति से देहि को है बांधता,
आसक्ति भी बढ़ती जाती, ज्यों-ज्यों रजोगुण बढ़ता ।
आसक्ति का मुख्य कारण, होता अंतर का अहंकार,
बढ़ने से इसके अंतर में, उत्पन्न होते घृणित विकार ।

यह अहंकार अंतःकरण की, एक वृति का है नाम,
इसका स्वरुप होता सदैव ही, काले सर्प समान ।
जब यह काला सर्प किसी, प्राणी को लेता है डस,
चेतना उसकी लुप्त हो जाती, जीवन अधर में फँस ।

अहंकार ग्रसित मानते अपनी, अलग एक पहचान,
आत्मा से खुद को भिन्न मानने, लगता वह इंसान ।
उसी पहचान के इर्द गिर्द, करता वह सारा काम,
उसकी बुद्धि होती सदा, उसके पहचान की गुलाम ।

अहंकार निज स्वरुप भी, पल-पल बदलता रहता,
एक जगह जो होता सत्य, दूसरे जगह नहीं होता ।
जिस अहंकार का प्रदर्शन, हम कमजोरों पर करते,
शक्तिशाली के सामने आते, छूमंतर वही हो जाते ।

अहंकार नहीं होता है एक, इसकी श्रृंखलाएं है होती,
जीवन में साँसों की भाँति, यह आते जाते है रहती ।
मन की गति को ज्ञानियों ने, तीव्रतम सदा है माना,
अहंकार की गति को भी, इससे कोई कम न जाना ।

यह मन भी इसी अहंकार से, रचा बसा है रहता,
मन कोभी अहंकार का एक, रूप कभी है मानता ।
जब कभी भी मनुष्य होता, इस अहंकार से मुक्त,
तब मन भी निरर्थक गति से, रहता नहीं है युक्त ।

अहंकार एक शैतान समान, परमात्मा से रखता दूर,
वर्जित कर्मों को करने में, हिचकिचाता नहीं यह क्रूर ।
यह पाप का मूल, आसुरी सम्पदा एकत्रित करता,
जीवन का उद्देश्य मोक्ष से, दूर मनुष्य को रखता ।

अहंकार भिखमंगा के सम, तृप्ति इसे कभी न होती,
चाहे जितना भरो इसे, खाली की खाली यह रहती ।
असाध्य रोगकी तरह यह, मनुष्य को खोखला करती,
लग जाती जिसके जीवन, सुख-शांति कभी न रहती ।

अहंकार हमेशा चाहता है, यह चाह ही दुःख का कारण,
मनुष्य जितना इसे चाहता, उतना दुःख करता धारण ।
अहंकार में मनुष्य का सम्बन्ध, अध्यात्म से है टूटता,
नैतिक पतन होता उसका और द्वार नरक का खुलता ।

अहंकार के कारण लोभ, मोह, वासनादि उत्पन्न होता,
जिससे मनुष्य कर्म-जाल के, बन्धन में फंस है जाता ।
जिसके बाद उसके लिए, मोक्ष पाना असंभव हो जाता,
परिणाम सर्वविदित सदैव, वह पूर्ण नष्ट-भ्रष्ट हो जाता ।

अहंकार से मुक्ति कैसे पायें, यह है एक यक्ष प्रश्न,
पर बहुतों ने कर दिखाया है, जीवन में कर प्रयत्न ।
सभी संत, ज्ञानी पुरुष कहते, भुला दो मैं की बात,
अर्थात मैं कर्ता नहीं हूँ, यह बात हो स्वयं को ज्ञात ।

यह मैं ही है जो अहंकारों की, श्रृंखला बनाती है रहती,
सकारात्मक विचारों के सृजन से, वंचित सदा है रखती ।
अहंकार के जटिल चक्रव्यूह को, तोड़ पाना नहीं आसान,
मन-प्राण से नम्रता, समर्पण और त्याग का आना प्रधान ।

मृत्यु-बोध का ज्ञान दिला सकता अहंकार से छुटकारा,
जिन भौतिकता पर है गुमान होता वह क्षणभंगुर सारा ।
यह जान हमारे भीतर का, अंतर्ज्ञान जाग जब जाता,
तब अहंकार का भाव, समर्पण में है होम हो जाता ।

हृदय में प्रेम का दीपक यदि, अंकुरित रहे होता निरंतर,
अहंकार के रोग से पाना तब, होता न ज्यादा कष्टकर ।
प्रेम की लौ से अहंकार का, तम स्वतः ही छटने लगता,
यदि प्रेम संग समर्पण हो तो, अहंकार कभी न फटकता ।

निज जीवन पथ से रखे दूर, मनुष्य अहम् और वहम,
तभी जीवन यह वन पायेगा, जीने के लायक सुगम ।
परमात्मा ही एकमात्र है कर्ता, समझे मनुष्य यह बात,
अहंकार से मुक्ति पाने को, होगा यह सदैव पर्याप्त ।

---------o--------

संयम

संयम सतत एक युद्ध है, स्वयं अपने ही विरुद्ध,
विजयी इसमें मनुष्य वही, जिसका अन्तर शुद्ध ।
उतार-चढाव, उत्थान-पतन, जीवन के सब अंग,
संयम रखकर आगे बढ़ा जो, मानव वही दबंग ।

संयम है एक स्वाभाविक गुण, जब व्यक्ति में होता,
जीवन उसका खुशियों और सुखों का संगम होता ।
संयम मनुष्य को क्षीर और गंभीर बना है देता,
जीवन में निर्णय लेने को, सुस्थिर बना है देता ।

बाधा, विघ्नों से भरा सदैव, होता है जीवन का पथ,
संयम जिसमें होता, उसपर भी दौड़ाता निज रथ ।
संकट जीवन पथ में चाहे, कितना भी हो गहरा,
संयम से गर काम लिया तो आगे कभी न ठहरा ।

संयम सुख, समृद्धि, तरक्की, का कहा जाता है द्वार,
संयम का परिणाम ही है, जो दृष्टिगत आज संसार ।
संयम से विषयों के प्रति, नहीं होती कभी आसक्ति,
और नहीं विषयों के लिए, कभी करता कोई युक्ति ।

हठपूर्वक वश करना इन्द्रियों को, दमन कहा है जाता,
तथा वृतियों को नियंत्रण करने को, संयम कहा है जाता ।
करणीय और अकरणीय का, विवेक जग जाना संयम,
और स्वयं पर प्रयाश कर, रखना नियंत्रण होता संयम ।

संयम में कभी हठयोग नहीं, सहजयोग काम है आता,
बरबस नहीं, सहजता से सदा, अनासक्त हुआ है जाता ।
संयम इंसान का बेहतरीन गुण, सिखाता स्वयं से प्यार,
मानव का इससे बढ़ता आत्मबल, बदलते नहीं विचार ।

अहितकर, अनावश्यक प्रवृति से, विरत होना है संयम,
निज स्वच्छंदता पर नियंत्रण, लगाना होता है संयम ।
संयम का मतलब जीवन में, होता रहना सदैव सचेत,
अन्तस्थल में घट क्या रहा, रखना इन सबका लेख ।

संयम ऐसा मित्र जो रहता, नयनों से सदैव विलुप्त,
पर मनुष्य की शक्तिधारा में, रहता सदैव ही युक्त ।
संयम के द्वारा मनुष्यों में, होता शक्ति का संचय,
निरर्थक प्रवृतियाँ रुकने से, रुकता इसका अपव्यय ।

संचित शक्ति से मनुष्य का, उत्थान सहज हो जाता,
क्योंकि विखरी शक्तियां, सफलता नहीं कभी दिलाता ।
कहते बाहरी सुख सिमित, क्षणिक और दुखदायक,
संयम का आनंद अपरिमित, स्वाश्रयी और फलदायक ।

संयम का क्या महत्त्व? सभी, अच्छी तरह से जानते,
लेकिन इसका उपयोग यथोचित, शायद ही कर पाते ।
जीवन पथ में हर कदम पर, होती संयम की दरकार,
इस भौतिकवादी युग में होते, संयम के अनेकों प्रकार ।

इन्द्रियाँ, मन, वाणी का संयम, इन सब में अति-प्रधान,
अपनाने से जीवन में इन्हें, व्यक्ति बन जाता महान ।
इन्द्रियाँ अपने विषयों को, पाने को रहती सदा सन्नद्ध,
और सेवन कर खुद को पाता, वह उसमें ही आवद्ध ।

कलुषित प्रवृतियों का होने, लगता उत्तरोत्तर विकास,
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ का, होने लगता है प्रवास ।
अंकुश नहीं लगा इनपर तो, जीवन पतन की ओर,
और अंतिम परिणाम इनका, कटेगा मुक्ति से डोर ।

अतः हो जाता आवश्यक, इनको वश में रखना,
और इनमें आसक्ति से, स्वयं को वचाये रखना ।
इन्द्रियों को वश में रखना, संयम से होता संभव,
प्रयास करें, संयम वरतें, कुछ भी नहीं असंभव ।

वाणी में संयम का होना, होता तप के सामान,
संयमित वाणी जीवन में, सिद्धि का होता प्रमाण ।
शीतल जल, चन्दन का रस, या हो ठंढ़ी छाया,
ख़ुशी नहीं देती उतनी, जो मीठी वाणी में पाया ।

कटु बचन दूसरे के मन को, ठेस सदैव पहुँचाते,
अपने सगों को भी घसीट कर, कुरुक्षेत्र ले आते ।
शब्दों में इतनी ताकत जो, गोलों में भी नहीं होती,
वाणी किसी को राजा तो, किसीको रंक बना देती ।

वाणी जबतक मुख में है, तबतक ही उस पर वश,
मुख से निकल जाने के बाद, वह हो जाती परवश ।
मीठी वाणी जीवन में, व्यक्तित्व को देती निखार,
और कड़वी वाणी ले जाती, शत्रुता के हमें कगार ।

अतः वाणी जो निकले मुखसे, निकले सोच समझकर,
स्वपर हितकारी, मधुर और, मर्यादा को सदा रखकर ।
मन का संयम, अर्थात स्वयं पर, कैसे रखें नियन्त्रण,
यही मुक्ति का कारण बनता, बनता कारण बन्धन ।

सदैव हीं मनके हारे हार है, और मन के जीते जीत,
मन से बड़ा न शत्रु कोई, और मन से बड़ा न मीत ।
यह मन तो प्रमथनशील है, और अधिक बलवान भी,
चंचल मन का निग्रह करना, कठिन और दुसाध्य भी ।

जिधर न जाना चाहिए, मन उधर होता आकृष्ट,
सुगम पथ को दुर्गम बना, देता है यह निकृष्ट ।
जिसे न करना चाहिए, मन करने को वही होता,
प्रयास कर, वैसा न होने दें, संयम वही है होता ।

संयम रख कर जिसने भी, मन पर पायी जीत,
वही होता भावित निष्काम, लगाता मोक्ष से प्रीत ।
स्वयं पर संयम रखकर, स्थितप्रज्ञ मनुष्य बन जाता,
परिस्थिति कोई हो उसमें, स्वयं को स्थिर वह पाता ।

जिनमें संयम नहीं उनकी, इच्छायें बदलती हरपल,
और परीक्षा की घडी में, सावित होता वह निर्बल ।
जिस व्यक्ति में संयम नहीं, वह होता मृत समान,
विचार, भाव, इन्द्रियों का, बनकर रह जाता गुलाम ।

संयम बिना मानव और पशु में, रहता न कोई फर्क,
विवेक आभाव में मानव जीवन, बन जाता है नर्क ।
असंयमित, विवेकरहित और स्वच्छंद जीवन जो जीता,
उसके पतन का मूल कारण, केवल संयम है होता ।

संयम बरतने की पहली सीढ़ी, का है नाम संतोष,
जो प्राप्त है, वही पर्याप्त है, का रखें भाव विशेष ।
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, से रखें खुद को दूर,
क्षमा, दया, आजर्व, सत्य, ह्रदय में रखें भरपूर ।

संसार के प्रति अपने भाव को, रखें सदा तटस्थ,
निश्चय होकर, मन को स्थिर, रखने में बने समर्थ ।
नकारात्मक्ता को हटा, सकारात्मकता का दीप जलायें,
संयम अपना, स्थितप्रज्ञ बन, परम को प्राप्त हो जायें ।

---------o--------

मन

मन बहुत ही क्लिष्ट विषय, समझना नहीं आसान,
मन को वश में कर लिए, तो मिल गए भगवान ।
मन होता है जब चंगा, होता तब कठौत में गंगा,
दुग्ध-धवल, निर्मल अन्तर, तब ही मन होता चंगा ।

सत्य है, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत,
मन से बड़ा न शत्रु कोई, मन से बड़ा न मीत ।
इंसान में वास्तविक शक्ति सदा होता उसका मन,
एकाग्र करनेमें सफल हुए तो सफल होता जीवन ।

मन की शक्ति से देते, विचारों को सदा आकार,
भविष्य आपका तय करते, मनमें चल रहे विचार ।
मन पर दर्पण की भांति, जमना न चाहिए मैल,
सत्य भी झूठा लगे जब, मन पर जम जाये मैल ।

मन के आगे न लगे तो, बनता है शब्द नमन,
पीछे अगर लगायें न तो, बन जाता शब्द मनन ।
बढ़ते रहे जीवन पथ पर, करते नमन और मनन,
निश्चित रूप से बाधाओं का, होता रहेगा शमन ।

मन अगर रहता है शांत, तो जीवनमें रहती शांति,
अशांत मन जीवन पथ पर, लाती रहती है भ्रान्ति ।
अदृश्य पर शक्तिशाली मन पर, आयें करें विचार,
समझ जटिलता मन की, लाएं शांति अगम अपार ।

भगवान के जो शक्ति दो, परा और अपरा प्रकृति,
इन्हीं दोनों के संगम से, प्राणिओं की हुयी उत्पत्ति ।
पंच-महाभूत के साथ में, मन, बुद्धि और अहंकार,
ये सभी आठ हैं अपरा प्रकृति के, मूलभूत प्रकार ।

अपरा प्रकृति से निर्मित होती, है यह स्थूल काया,
तथा चेतनता रूप परा प्रकृति, इसमें जब समाया ।
तो जड़ और चेतनके संगम से बनता जीव सजीव,
चेतनता के बिना यह स्थूल, काया है रहती निर्जीव ।

पंच-महाभूत के हिस्से को, देख, स्पर्श कर सकते,
मन, बुद्धि और अहंकार त्रय, अदृश्य सदा ही रहते ।
यह मन शरीर का काफी शक्तिशाली हिस्सा होता,
चलायमान मानव तनमें यह, प्रभावशाली अति होता ।

मन का पावन आत्मा से, होता नहीं कोई सम्बन्ध,
सामान्यतया मन चंचल होता, और होता स्वच्छन्द ।
इस शरीररूपी रथ में इन्द्रियाँ, होते तुरग समान,
मन इस रथ का सारथी, थामता है इसका कमान ।

इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को यह, रहता सदैव भटकाता,
और इन्द्रियोंके परवशहो, विवेक सदा झुक जाता ।
आत्मा रूपी रथ का स्वामी, केवल रहता एक द्रष्टा,
क्रिया-रहित होने के कारण, होता नहीं कभी कर्ता ।

यह चंचल मन मनुष्य को, अक्सर भ्रम में डालता,
वही एक सर्वशक्तिमान्, वही सबकुछ कर सकता ।
इसी भ्रममें पड़ हर कोई, मनके आगे झुक जाता,
और दूसरों पर अन्याय, करने को विवश कर देता ।

मनुष्य में 'मैं' रूपी अहंकार, जब भी है उत्पन्न होता,
इसके पीछेका मूल कारण, यह पाखंडी मन होता ।
मन ही इन्द्रियों को उसके विषयों की ओर भगाता,
मनुष्य उनमें हो आसक्त, पाने की कामना करता ।

कामना अपूर्ण रहने से उसमें, क्रोध उत्पन्न है होता,
क्रोध की अधिकता होनेसे, मूढ़भाव उत्पन्न है होता ।
मूढ़भाव से ग्रसित होने पर, स्मृतिभ्रम सदा हो जाता,
और स्मृतिभ्रम में पड़ने से, बुद्धि का नाश हो जाता ।

बुद्धि का नाश हो जानेसे मानव का पतन हो जाता,
भलीभाँति जानते पतित मनुष्यका जीवन कैसा होता ?
यह मन तन से, खुशियों से, दुखों से मोह है करता,
खुशियों के वातावरण में, खुशियों से भरा गीत गाता ।

और दुःख की छाया पड़ने पर, दुख भरे गीत गाता,
अपने दुःखमें दूसरोंको शामिल कर वह खुश होता ।
अपने सुख में मन नहीं चाहता और कोई संग आये,
उसके हिस्से के आये सुखमें और कोई हाथ बटाये ।

मन मनुष्य को जीवनभर निज जाल में बांधे रहता,
तथा सख्त अपने जकड़न से बाहर आने नहीं देता ।
और फाँसमें बंधे मनुष्य को नाच नाचते यह रहता,
सोचने-विचारने को पलभर भी फुर्सत नहीं है देता ।

इतना भी वक्त नहीं देता की झाँक सकें हम अन्तर,
हृदय-आसीन परमात्मा को भी देख सकें हम पलभर ।
यह मनभी बड़ा ही धूर्त और चालाक तथा पाखण्डी,
सदा घुमाते ही रहता जीवन के भिन्न-भिन्न पगडण्डी ।

जिसपर करना ध्यान केंद्रित, वहाँ जाने नहीं है देता,
और इन्द्रिय-विषयों में ही, उलझाए सदा यह रहता ।
वह डरता है, मनुष्य कहीं, हमको ही समझ न जाए,
मेरी मनमानी पर वह, मुझपर ही अंकुश न लगाये ।

अतः आवश्यक है मनुष्य, रखे निज मन को वश में,
और छोड़ कभी बेलगाम उसे, नहीं दे घूमने जग में ।
मन को काबू में करके वो, अपने अन्तर्मन में झाकें,
और अन्दर में बैठे शान्त, उस परमात्मा को देखे ।

स्पष्ट दिखाई देगा वहाँ, परमात्मा का दिव्य प्रकाश,
और आत्मासे परमात्मा के, मिलन का होगा आभास ।
अंश का होता गंतव्य सदैव, अपने पूर्णांश से मिलना,
और एकाकार होकर उसमें, निज अस्तित्व को भूलना ।

सार्थक प्रश्न, मन परमात्मा तक, आपको क्यों ले जाये ?
जब आसानी से आपको वह, दृश्य जगमें नाच नचाये ।
गीता अनुसार इस प्रश्न का, उत्तर है बहुत ही स्पष्ट,
मन जबतक न होगा काबू में, यह देता रहेगा कष्ट ।

स्वयं रहोगे जबतक जगमें, मन और विषयों के अधीन,
तुझे नचाता रहेगा यह मन, जोहोता, अति चतुर प्रवीण ।
यह मन, इन्द्रियों को उसके, विषयों में लगा है देता,
सारथी रूपी चंचल मन, इन्द्रियरूपी घोड़ों को दौड़ाता ।

इसलिए सर्वप्रथम मनुष्य, इन्द्रियों को अपने वश कर,
ज्ञान का नाश करनेवाले निज कामनाओं का वध कर ।
इसके बाद बुद्धि द्वारा मनुष्य, निज मनको वशमें करे,
और अनासक्त हो जीवन पथ पर, कर्म निष्काम करे ।

ध्यान रहे, मन, बुद्धि पर, होने न पाये कभी हावी,
ऐसा हुआ, तो होने लगेगा मन, फिर से पुनः प्रभावी ।
इसलिए मनके ऊपर सतत, नियंत्रण होना आवश्यक,
क्योंकि मनतो अति चंचल है, चंचलता इसकी फितरत ।

मन को नियंत्रण में लाने को, बताये गये दो साधन,
अभ्यास और वैराग्य का, लगायें मनके उपर शासन ।
बेलगाम घोड़े की भांति मन, भागता जो इधर-उधर,
प्रयास कर लगाम लगाने से, जाता वही अश्व सुधर ।

ढील थोड़ीसी भी देने पर, सवार को पलट वह देता,
सवार के हर प्रयास का, वह अश्व विरोध है करता ।
सवार अपने अथक प्रयास से, अश्व को साधे रहता,
सतत प्रयास से वह निरन्तर, अश्व को वशमें रखता ।

वैसे ही अभ्यास से मन पर, रखना सतत नियन्त्रण,
अभ्यासके निरन्तरता में कभी आये नकोई अड़चन ।
और एकदिन यह चंचल मन, आजाता अपने वशमें,
तथा अपने स्वामीका कहना, मानने लगता हर पलमें ।

पर चंचल मन कहीं पुनः, चल जाये न उलटे रास्ते,
जहाँ पर इन्द्रिय-विषय उसको, आकर्षित रहते करते ।
यहीं पर मन को समझाना, भोग-विलास सब मिथ्या,
ये सुख सारे सदैव अनित्य, असार, भ्रम और मिथ्या ।

समझने पर, मन को विषयों से, वैराग्य पूर्ण हो जाता,
और यही वैराग्य, मन को, विषयों से दूर भगाता ।
अभ्यास और वैराग्य से मन पर, रहता सतत नियंत्रण,
सधे अश्व की भाँति स्वामी के, अधीन रहता यह मन ।

अपने अधीन जब होगा मन, एक अच्छा सारथि होगा,
शरीर-रूपी इस रथ को सीधे, प्रभुचरण में ले जायेगा ।

---------o--------

मुक्ति

यह दुनिया है बड़ी विचित्र, चलता रहता भाँति चलचित्र ।
अष्ट जड़ प्रकृति से निर्मित, दृष्टिगत सृष्टि, अति -विस्तृत ।
सृष्टि निर्मित सब चर-अचर, होते हैं सभी पूर्णतः नश्वर ।
भौतिक सुख साधन समस्त, इन्हीं जड़ों से उदित-अस्त ।

यह जीवन जोहै हमें प्राप्त, पाने को करते इन्हें समाप्त ।
जीवन जाता पूर्णतः उलझ, नहीं पाता यह कभी सुलझ ।
जो पाया, नहीं उससे खुश, अधिक पाने की रहती भूख ।
समय सतत बीतती जाती, कांक्षा की प्यास नहीं बुझती ।

और पाने की कोशिश नित, उलझकर रह जाता चित ।
कामना और मोह में फँस, मानव हो जाता है वेवश ।
शांति की तब होती तलाश, दीखता नहींजो आस-पास ।
मन सदैव विचलित रहता, नहीं एकजगह पर टिकता ।

इन्द्रियाँ जो मन के अधीन, रहते अपने विषयों में लीन ।
फिर मन कैसे होगा शांत, रहता सदा ही श्रांत क्लान्त ।
सुख, शांति का होता अंत, भटकता रहता जीवन अनंत ।
जागृत होती है इच्छा तब, मिले इन सबसे मुक्ति कब ।

क्यों हम विषयों के प्रति, बढ़ायें रखें अपनी प्रीति ।
कामना जो होती अन्तहीन, दुःख देती है सतत असीम ।
इससेतो मुक्त होना होगा, मुक्ति कीओर बढ़ना होगा ।
सख्त कदम उठाने होंगें, विषयासक्ति मिटाने होंगें ।

विषयों में जबतक आसक्ति, नहीं मिलेगी कभी भी मुक्ति ।
विषय होते विष के समान, मनुष्यों सब इसको पहचान ।
ज्ञानेन्द्रियाँ जो हैं हमारे पांच, कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक ।
इनके पांच विषय जो संग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ।

ज्ञानेन्द्रियों के जो पांच विषय, सांसारिक बंधन, बिना संशय ।
इनके स्वाद - रूपी बंधन में, पाता कष्ट मनुष्य जीवन में ।
बार-बार जग में लेता जन्म, छोड़ता जग कर मृत्यु वरण ।
कष्ट भोगता असीम अपार, फिरभी न छोड़ पाता संसार ।

विषयों में वो रहकर आसक्त, सोचता यही है सुख समस्त ।
पर वह तो दुखों के सागर में, डूबता - तैरता रहता उसमें ।
विषयही सभी अनर्थों का मूल, त्यागना ही होगा इसे समूल ।
विषय-त्याग सूत्र है वैराग्य का, आसक्ति रहस्य है बंधन का ।

विषयों का अगर करते त्याग, तब वैराग्य से होगा अनुराग ।
विषयों में रही अगर आसक्ति, बन्धन से होगी नहीं मुक्ति ।
विषय आवागमन का साधन, भ्रमण कराता रहता अपावन ।
विषय का त्यागना होता क्या? जानना होगा, हमें पूर्णतया ।

नहीं समझे गर इसका अर्थ, तो हो जायेगा बृहत् अनर्थ ।
विषयों के प्रति जो आसक्ति, कर त्याग पूर्ण, पाना मुक्ति ।
विषयों से रखना अलगाव, थोड़ाभी नहीं रखना खिचाव ।
विषयों का जब करते त्याग, मतलब नहीं, जरुरतोंका त्याग ।

अर्थ नहीं भोजन का त्याग, जरुरी सुख सुविधा का त्याग ।
जीवन की न्यूनतम जरुरत, संबंध रहे उससे हर सूरत ।
शास्त्रसम्मत सीमा न्यूनतम, पार नहीं करें उसको हम ।
सीमासे जायदाका उपभोग, अधिक पाने का बढ़ाता रोग ।

ध्यान लगा रहता है उसपर, पूर्ण करें इसे कैसे पाकर ?
कर्म उसी के वास्ते करते, उसे पाने को तरसते रहते ।
आसक्ति सतत जाती बढ़ती, लोभ, तृष्णा उत्पन्न करती ।
मोह, मद, राग, ईर्ष्या और द्वेष, घृणा, दुःख, चिन्ता विशेष ।

दुर्गुण ये समस्त समा जाते, जो व्यथित सदा करते रहते ।
एक दुष्चक्र सा बन जाता, नहीं कभी जो पीछे छूटता ।
जन्म-जन्मांतरों तक चलता, आसक्ति विष सा बना रहता ।
केवल विषयों के त्याग से, आत्मज्ञान प्राप्त नहोती उससे ।

पर उससे मनुष्य में पात्रता, निश्चित रूप में आ जाता ।
आत्मज्ञान प्राप्त करनेका वो, अधिकारी तब, बनजाता वो ।
मोक्ष की ओर पहला कदम, आगे बढ़ते पाने को परम ।
इसलिए विषयों से आसक्ति, करें दूर अंतर ला विरक्ति ।

आसक्तिका जब होगा त्याग, दुर्गुण सबहो जायेगें साफ ।
विषय रूप विष जो अन्तर, मिट जायेगें सब तदनन्तर ।
अन्तर का होगा पात्र रिक्त, तैयार पुनः होने को सिक्त ।
तब भरें उस खाली पात्र में, सद्गुण रूपी अमृत उसमें ।

क्षमा, सरलता, संतोष, दया, और सत्यसे भर लें पूर्णतया ।
अमृतरूपी जो सदगुण भरे, उसका सेवन, उपयोग करें ।
आचरण, व्यवहार में उतार, जियें जीवन रख दूर विकार ।
जीवन की नौका का पतवार, लगेगा करने वैतरणी पार ।

जैसे औषधि का कर सेवन, दूर भगाते व्याधि जग जन ।
वैसेही पाँच गुणरूपी अमिय, का सेवन करता कोई प्रिय ।
तो उसके अचूक प्रभाव से, स्वस्थ होते सभी विकार से ।
दूर विषय बन्धन होते जब, ज्ञान-प्राप्ति मार्ग खुलते तब ।

आत्म ज्ञान प्राप्त करने का, अधिकारी बन जाता उसका ।
विषय त्याग होता जब पूर्ण, देहासक्ति मिटता सम्पूर्ण ।
मोह, माया, बन्धन, लगाव, पड़ता नहीं इनका प्रभाव ।
आत्मा से जुट जाता सम्बन्ध, मुक्ति मार्ग खुलता जो बंद ।

आसक्तिका जब होता त्याग, तब सूत्रपात होता वैराग्य ।
पर हमतो ठहरे नीरा मनुष्य, दूर - दूर तक नहीं वैदुष्य ।
संग में रहता संशय, उलझन, सतत उठते रहते हैं प्रश्न ।
पंच- महाभूत से निर्मित तन, धरा, जल, अग्नि, वायु, गगन ।

सब यही शरीर का निर्माता, शरीर ही आत्मा कहलाता ।
ये पांचों से जो शरीर उदय, इनपांचों केभी पांच विषय ।
पृथ्वी का गंध, जल का रस, अग्निका रूप, वायुका स्पर्श ।
और आकाश का होता शब्द, तन पंचमहाभूत का अब्द ।

कैसेकर सकता इनका त्याग, स्वयंतो उस पंच का भाग ।
संभव तभी विषयों का त्याग, जब हो पंचभूतों का त्याग ।
यदि पंचभूतों का हुआ त्याग, हो जायेगा शरीर का पात ।
तन ही विनष्ट जबहो जायेगा, तोफिर कौन मुक्ति पायेगा ?

इसलिए इन विषयोंका त्याग, हो नहीं सकता, हे महाभाग ।
जबतक जगत में यह शरीर, विषयोंके संग जीना तकदीर ।
शंका जबतक ऐसी मनुष्यमें, कैसे पायेगा मुक्ति जगत में ?
यही सोंच है अविद्या, अज्ञान, करना होगा इसका निदान ।

इसका सत्य से सम्बन्ध नहीं, तू पृथ्वी, जल, आकाश नहीं ।
पंच-भूत के जो पांच विषय, वो भी नहीं तुम है महाशय ।
यह सिर्फ एक अहं भाव है, जिसका तुझ पर प्रभाव है ।
'मैं हूँ' से तुम अति पीड़ित, नश्वर तत्वों से तन निर्मित ।

उसे ही मानता तुम अपना, खुदको सत्य से दूर रखना ।
देहको निज कहना अज्ञान, पाने नहीं देता जो आत्मज्ञान ।
मिटने नहीं देता आसक्ति, भौतिकता सदैव हावी रखती ।
मुक्ति मार्ग करता अवरुद्ध, मुक्ति कैसे? बिना ज्ञान शुद्ध ।

संशय फिरभी रहता निरंतर, गोरा-काला या कुरूप-सुंदर ।
इन सबका होता है आभाष, फिर देह नहीं? कैसे विश्वास ।
इसपर सोंचता हूँ मैं जितना, डूबता-उतराता हूँ मैं उतना ।
संशय चढ़ जाता उत्कर्ष पर, आता नहीं कोई निष्कर्ष पर ।

संशय रखना होता अज्ञान, अज्ञानी पुरुषों की पहचान ।
ज्ञान की दृष्टि से करें बात, ज्ञान, कर्म इन्द्रिय युक्त गात ।
पर इस तन से तुम पृथक, केवल एक द्रष्टा मात्र अथक ।
जैसे दृष्टिगत सम्पूर्ण जगत, दीखता हुआ भी है पृथक ।

संसार स्थित वस्तुयें समस्त, दीखता सब, पर रहता अलग ।
वैसे ही दृष्टिगत है यह तन, यह तुम नहीं, सर्फ एक बदन ।
तुम हो केवल एकमात्र द्रष्टा, साक्षी केवल, नहीं कोई कर्ता ।
केवल एक आत्मा दोषरहित, व्यापक और सीमा रहित ।

पर रहता एक शाश्वत प्रश्न, यह द्रष्टापन या साक्षीपन ।
बुद्धि से विचारणीय विषय, मतलब, बुद्धि ही आत्मा है ?
पर बुद्धि तो है जड़ विषय, और आत्मा है चेतन विषय ।
पंचभूत, मन, बुद्धि, अहंकार, आठ जड़से निर्मित संसार ।

इसलिए बुद्धि, आत्मा नहीं, आत्मा चैतन्य स्वरुप सही ।
आत्मा को पूर्णतः जानकर, सम्पूर्णता से पहचान कर ।
वैराग्य भाव अन्तर लाकर, गुरु का मार्गदर्शन पाकर ।
आत्मा क्या है ? जानें बात, आत्मज्ञान को करें प्राप्त ।

पर आत्मज्ञान को प्राप्तकर, फल क्या होगा, हे ईश्वर ?
उत्तर बिल्कुल ही स्पष्ट है, आत्मा जो पूर्ण निष्पृह है ।
चैतन्य आत्मा को जानकर, आत्माका ज्ञान प्राप्त कर ।
रहना उसमें निरन्तर स्थित, दिलाता मानव को मुक्ति ।

मुक्ति क्या होता? नहीं स्पष्ट, इसपर विचार पृथक-पृथक ।
कोई दुखोंके नाशको मुक्ति, कोई देह-विनाश को मुक्ति ।
जिसे होता आत्मज्ञान प्राप्ति, कहते उसे मिल गयी मुक्ति ।
इसलिए मानव तुम स्वयंको, शरीर एवं सभी बिषयों को ।

केवल एक साक्षी मानकर, स्वयंको एक द्रष्टा जानकर ।
बंधनों से तू हो जा मुक्त, और स्वयं से हो जा युक्त ।
शरीर रूपी तुम घर नहीं, पहचानो तुम स्वयंको सही ।
शरीर रूपी सदनका तुम, रहनेवाला मालिक हो तुम ।

मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर, खत्म होता तन नष्ट होकर ।
पर तुम मृत्यु के पूर्व उससे, तोड़ लोगे सब नाता उससे ।
और उस शरीर को त्यागकर, निकलेगा अगली यात्रा पर ।
मृत्यु, आत्मा की तयारी होती, एकनए सफर पर बढ़नेकी ।

शरीर को समझो केवल तुम, नश्वर घर, जिसमें रहते तुम ।
जिसदिन ऐसा समझ जाओगे, पूर्णतः मुक्त तुमहो जाओगे ।

---------o--------

कर्म

चौरासी लाख योनियों से है, सुसज्जित यह संसार,
भोगयोनि, कर्मयोनि संग, प्राणियोंके विविध प्रकार ।
भोगयोनि में केवल उनके, शुभ-अशुभ कर्मों को,
उसी योनिमें जाता भोगवाया, ईश्वर द्वारा है उनको ।

इन योनियोंमें कर्म करनेकी, स्वतंत्रता नहीं है होती,
पुण्यकर्म करने परभी उन्हें, पुण्य प्राप्त नहीं होती ।
दुष्कर्म करने परभी कोई, पाप नहीं इनको लगता,
व्रत करें, ध्यान-भजन करें, कल्याण न इनका होता ।

एकमात्र जो मनुष्य योनि है, उभय योनि यह होता,
जो भोगयोनि तो होताही है, कर्मयोनि भी है होता ।
मनुष्य को इसमें कर्म करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता होती,
सुख-दुःख के स्वादों का उन्हें, अवसर प्राप्त होती ।

इस वसुधा पर नर का जीवन, कर्म आधारित होता,
और उसका कर्मही जीवनका पथ निर्धारित करता ।
बिना कर्म किये जीवनका, निर्वाह भी नहीं होसकता,
जीवन जबतक, मनुष्य यहाँपर, कर्म ही करता रहता ।

कर्म हमारे जीवन का होता, सदैव एक शाश्वत अंग,
जबतक रहता है यह जीवन, तबतक रहता है संग ।
कर्म क्या है?परिभाषित इसे, कियागया किस प्रकार ?
कितने प्रकार के होते कर्म, समझें इसे हर प्रकार ।

शरीर, मन, वाणी से की गयी, क्रिया होता सब कर्म,
कर्म की गति होती है गहन, मनुष्य जाने इसका मर्म ।
कई प्रकार के नामों से जग में, जाना जाता यह कर्म,
नित्य, नैमित्य, काम्य, निश्काम्य, संचित, निषिद्धादि कर्म ।

दो प्रकार के कर्मों का, गीता में किया गया है वर्णन,
सकाम कर्मबंधन जनक, निष्काम उच्छेदक कर्मबंधन ।
कर्मफल तथा आसक्तिरहित होतासदा कर्म निष्काम,
संपन्न करनेसे मनुज करता, प्राप्त मोक्षरूप परमधाम ।

पुनर्जन्म की अवधारणा का, सदा आधार होता कर्म,
कौनसा योनि या वर्ण मिलेगा, निर्धारित करता कर्म ।
निर्वाण प्राप्ति का आधार भी, होता किया गया कर्म,
सनातन संस्कृतीके आधारभूततत्व, कर्म और पुनर्जन्म ।

इस जीवनमें किया करतेहैं, कर्म हम चार तरीके से,
पहला विचारोंके जरिये से, दूसरा शब्दोंके साधन से ।
तीसरा क्रियाओं के माध्यम से, जोहम स्वयं करते हैं,
चौथा वो जो हमारे निर्देश पर, दूसरे किया करते हैं ।

हमने जो सोचा, कहा, किया, या कारण बने सब कर्म,
नर जोकुछ भी करता जीवन में, वह सब होता कर्म ।
कर्मोंके वर्गीकरण में बताये गए, तीन प्रकार के कर्म,
पहला कायिक, जिसमें शरीर द्वारा किये जाते हैं कर्म ।

दूसरा वाचिक, जिसमें वाणी द्वारा किये जाते हैं कर्म,
तीसरा मानसिक, जिसमें मन से संपन्न होता है कर्म ।
तीनों में सबसे महत्वपूर्ण होता, मानसिक कर्म विचार,
क्योंकि कायिक और वाचिकका, मन ही मूल आधार ।

प्रकृतिके गुणोंके आधार पर, होते तीन प्रकारके कर्म,
पहला सात्विक, दूसरा राजसिक, तीसरा तामसिक कर्म ।
शास्त्र सम्मत विधि से जो कर्म, किया गया हो संपन्न,
और कर्तापन का भाव कर्ता में, नहीं होता हो उत्पन्न ।

इस कर्ममें कर्ता कर्मफलकी, नहीं इच्छा कभी करता,
राग - द्वेष बिना संपन्न कर्म, सात्विक कर्म कहलाता ।
फलकी इच्छा को रखकर, किया गया जो कर्म संपन्न,
अहंकार से युक्त करता रखकर भोगों की इच्छा मन ।

बहुत परिश्रम पूर्वक सम्पन्न, किया गया यह जो कर्म,
राग स्थित रहने से यह, कहलाता है राजसिक कर्म ।
परिणाम, हिंसा, हानि, सामर्थ्य, आदि का कर अवहेलना,
प्रारम्भ किया जाता जो कर्म, अज्ञान से लेकर प्रेरणा ।

शास्त्र सम्मत आदेशों को रख, अलग किया गया कर्म,
दूसरों को दुःख पहुंचानेवाला, होता यह तामसिक कर्म ।
प्रकृतिके त्रिगुणों में कर्ता, जिस गुणको करता स्वीकार,
उसके कर्म का रूप भी होता, उन्हीं गुणों के अनुसार ।

कर्मफल के आधार पर भी, होते तीन प्रकार के कर्म,
कर्मके अनुसार फल होता, आयें, जानेंहम इसका मर्म ।
कर्म हमारे वश की बात, इसलिए भाग्य हमारे अधीन,
हम जैसा कर्म करेगें वैसा ही, भविष्य बनेगा प्रवीण ।

कर्मों के फलसे तो स्वयं, नारायण भी नहीं बच पाए,
सब जानते, श्री राम बाली पर, छुपकर बाण चलाये ।
वही बाली द्वापर युग में, बहेलिया के रूप में आया,
भगवान रूप में श्री कृष्ण को, बाणों से मार गिराया ।

बाणोंकी शैय्या पर सोना भी, भीष्म का था कर्मफल,
पुत्रशोक में प्राण त्यागना भी, दशरथका था कर्मफल ।
भगवान भी नहीं बच पाते तो, मनुष्योंकी क्या विसात,
जैसा कर्म करेगा, वैसा फल, निश्चित हीं करेगा प्राप्त ।

कर्मफलके आधार पर होता, पहला कर्म-संचित कर्म,
इस श्रेणी में वे कर्म आते, जो किया गया पूर्व-जन्म ।
जिन संचित कर्मोंका फल, नर इस जीवन में भोगता,
पूर्व-जन्म का संचित कर्म वह, प्रारब्ध कर्म कहलाता ।

वर्तमान जन्म में व्यक्ति द्वारा, किया जाता है जो कर्म,
तत्काल फल देने वाला वह, होता यह क्रियमाण कर्म ।
प्रारब्ध कर्म भोगने के बाद, जो संचित कर्म है बचता,
वह व क्रियमाण कर्मपर, आगामी जीवन निर्भर करता ।

बिना कर्म किये जीवनका, एकपलभी कभी न कटता,
और सही कर्म कर संपन्न, जीवन सार्थक कर सकता ।
मनुष्य अपने कर्मों का स्वामी, सदा स्वयं ही होता है,
और अपने कर्मों की ही वह, विरासत सदैव पाता है ।

शास्त्र सम्मत कर्मों से मनुष्य, रखे सदाही नाता जोड़,
और निसिद्ध कर्मों का त्याग कर, दे उसे पीछे छोड़ ।
निसिद्ध कर्म छूटने से विहित कर्म स्वतः होने लगते,
और मनुष्य का कर्मबंधन से, सम्बन्ध भी टूटने लगते ।

कर्मोंसे कर्तापन का भाव, लुप्त शनैः शनैः होने लगता,
कामना, वासना, फलासक्ति, आदि सब मिटने है लगता ।
अनासक्त भाव रखकर सदैव ही नियत कर्मको करना,
परिस्थिति कोई हो, सदैव ही, सम-भाव बनाये रखना ।

स्वधर्म रूप कर्म करता हुआ, पाप कभी नहीं लगता,
स्वधर्म या नियत कर्मकर, परमसिद्धिको प्राप्त करता ।
बिना आसक्ति, फलकी इच्छा के, करे यदि कोई कर्म,
जन्म-मरण से मुक्त हो जाता, मनुष्य जाने यह मर्म ।

---------o--------

कर्मफल

कर्मों के आधार पर मिलता जो मनुष्य को फल,
उसी को इस मानव लोकमें कहा जाता कर्मफल ।
भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में दिए यह परम ज्ञान,
जैसा कर्म करोगे मानव, वैसा फल देगा भगवान ।

मानव को कर्तव्य कर्म करने का केवल अधिकार,
कर्मफल प्राप्ति पर उसे नहीं मिला कोई अधिकार ।
केवल कर्तव्य - कर्म करने को, मानव को स्वतंत्रता,
कर्मफलकी प्राप्ति में उसे, मिली नहीं कोई स्वतंत्रता ।

फलेच्छा रखकर जब भी मानव कोई कर्म करेगा,
निश्चित रूप से कर्म-बंधन में बंधकर वह रहेगा ।
कर्मफल का हेतु भी तुम कभी न स्वयं को मान,
क्योंकि ईश्वर के हाथों में, कर्मफल का है विधान ।

और कर्म को नहीं करनेमें, नहीं हो तेरी आसक्ति,
कर्मफल के साथ न रखना, कभी भी निज भक्ति ।
चौरासी लाख योनि का तय करते जब हम सफर,
तब मानव रूप मिलता सुधारने, को आगेका डगर ।

सदा ही रखें याद इसे, मनुष्य योनि ही कर्म योनि,
शेष सभी पशु, पक्षी, पादप, देव, होते हैं भोग योनि ।
भोग योनि में सभी अपने, प्रारब्ध का फल भोगते,
स्वयं के उद्धार हेतु कोई, कर्मभी नहीं कर सकते ।

प्रारब्ध अर्जित पाप सभी, हो जाते जब सब खतम,
तब उद्धार हेतु ही मानव, पाता मानव रूप जनम ।
मनुष्य रूपमें कर्म अगर, सब स्वयं वास्ते ही होगें,
तब निश्चित रूप से हम, कर्म-बंधन में बंधते रहेगें ।

और कर्मों को नहीं करके आलस्य से भरे रहेगें,
फलस्वरुप तब जन्म-मृत्यु के, चक्र में फंसते रहेगें ।
इसलिए सेवा का भाव रख, कर्म को करे मनुष्य,
और सकाम कर्मों से स्वयं को, रखे अलग मनुष्य ।

प्राणी जब भी मानव रूपमें, इस धरती पर आता,
प्रारब्ध कर्म और नव पुरुषार्थ, लेकर संगमें आता ।
प्रारब्ध कर्मों का फलभोग, मानव रूप में भोगता,
और नए पुरुषार्थ से स्वयं, का उद्धार कर सकता ।

प्रारब्ध कर्मोंके फल पर, मानव का अधिकार नहीं,
अच्छा या बुरा जो भी, भोगना उसे पड़ता है यहीं ।
नए कर्म के निष्पादन में, मानवको होती स्वतंत्रता,
उससे अपने भविष्य का, आधारशिला रख सकता ।

नए कर्मोंसे ही होता, मानव के भविष्य का निर्माण,
निष्काम कर्म करते रहनेसे, मानव बनजाता महान ।
नए जनम में मनुष्य होता, कर्म करने को स्वतंत्र,
फल प्राप्तिकी होती बात तो, होता वो सदैव परतंत्र ।

परिस्थितियां चाहे जो भी हो, अनुकूल या प्रतिकूल,
सदुपयोग कर जीवनका, कर सकता उद्धार समूल ।
प्रारब्धानुसार जीवन में, शुभ-अशुभ परिस्थिति आती,
सुखदायी, दुखदायी अनुभव, यही परिस्थिति कराती ।

परिस्थितियोँ से पैदा सुख-दुःख, नहीं कर्मोंका फल,
बल्कि यहतो होती सदा, हमारी नासमझी का फल ।
क्योंकि परिस्थितियां तो सदैवही, बाहर से बनती है,
जिसके कारण सुख-दुःखकी, स्थिति आती रहती है ।

मनुष्य सदा ही परिस्थितियोँ से अभिन्नता कर लेता,
जिसके कारण ही सुख-दुःख का भोक्ता बन जाता ।
परिस्थिति के साथ अगर मनुष्य तादात्म्य नहीं करे,
बल्कि परिस्थिति का सदैव वो उपयोग उचित करे ।

वही परिस्थिति उसके उद्धार का साधन बन जाता,
उसी साधन सामग्री से उद्धार स्वयं का कर पाता ।
सुखकी स्थितिमें सीखें सदा दूसरों की सेवा करना,
तथा दुःखकी स्थिति में, भोग इच्छा का त्याग करना ।

दुखदायी स्थिति से प्रारब्ध के, पाप सब कट जाते,
लाभ रूप में शनैः शनैः हम, अकुत्सित होते जाते ।
परोक्ष रूपमें इससे हमें एक, चेतावनी मिल जाती,
भोग-इच्छा हेतु के पाप से, दुखदायी स्थिति आती ।

अतः सुख, भोग की इच्छा से, करें नहीं कोई काम,
नहीं तो कर्मफल रूप में, दुःख मिलेगें हमें तमाम ।
कर्मफल पर कभी मनुष्य का, होता नहीं है स्वत्व,
फिर भी करना चाहता वह, फल पर रख प्रभुत्व ।

वास्तव में कर्मके फल का, विधान ईश्वर के अधीन,
वही देता सदा कर्मफल, चाहे महिपति हो या दीन ।
भोक्तृत्व परही टिका रहता, हमारे कर्तृत्व की इच्छा,
अर्थात भोगकी इच्छासे उत्पन्न, होती कर्म की इच्छा ।

फलकी इच्छा मिट जानेसे, कर्तृत्व भी मिट जाता है,
कर्तृत्व के मिट जानेसे, कर्म-बंधन से नहीं बंधता है ।
इसलिए कर्मफल के संग, सम्बन्ध नहीं अपना जोड़ें,
परम शांति की प्राप्ति पथ के, हट जायेगें सब रोड़े ।

कर्म स्वयं हीं नित्य नहीं है, फल कैसे होगा नित्य,
अज्ञानता में कामना उसकी, जो है स्वयं अनित्य ।
ऐसे समझ गए तो अंतर में, निष्कामता आ जाता,
क्योंकि अनित्य कर्म और फलसे, लाभ नहीं होता ।

पर कर्मफलका ध्येय रखकर ही कर्म मानव करता,
धन-सम्पत्ति, यश-कीर्ति जगत में जाये सतत बढ़ता ।
स्वयं को ही वह सभी कर्मफलों का हेतु है मानता,
क्योंकि कर्मफल के संग जुड़ा, रहता आसक्ति, ममता ।

पर गीता कहता कर्मफल का, हेतु नहीं बनो तुम,
और उसके साथ कभी भी, आसक्ति नहीं रखो तुम ।
इसका मतलब यह नहीं कि, कर्म नहीं तुझे करना,
शास्त्रविहित सभी कर्मोंको, निष्पादित तुझे ही करना ।

कर्म नहीं करने से तुममें, आलस्य, प्रमाद आदि बढ़ेगें,
कर्तव्य कर्मोंके त्याग को, कभी तर्कसंगत नहीं कहेगें ।
कर्मफल में आसक्ति रखने से, होता जैसा है बंधन,
वैसा ही कर्म नहीं करने से, होता आलस्य संग बंधन ।

कर्म होती है स्थूल काया और फल उसकी परछाई,
काया के संग-संग ही चलती सदैव उसकी परछाई ।
प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया को विज्ञान भी है मानता,
निष्पादित कर्मका कर्मफल निष्फल नहीं कभी जाता ।

अर्जित प्रारब्ध कर्मों का कर्मफल कहलाता है भाग्य,
मृत्युलोक पर आकर जिसको भोगना पड़ता अवश्य ।
'जो बोयेगें वही काटेगें', यह महज नहीं एक कथन,
प्रकृति प्रदत्त इस सत्यको स्वीकार करें सभी श्रीमन ।

हमारे जीवन में कर्मफल का, सिद्धांत सदा अकाट्य,
अच्छा-बुरा कर्म हीं सदा गढ़ते, सौभाग्य या दुर्भाग्य ।
प्रभु श्रीराम और श्रीकृष्ण भी, बच न पाए थे इससे,
फिर साधारण प्राणी मानव, बच सकता जग कैसे ।

श्रीराम ने छुपकर बाली को, मारने का कर्म किया,
बाली बन व्याध अगले जन्म, श्रीकृष्ण का अंत किया ।
राजा दसरथ के कारण श्रवण कुमार की गयी जान,
पुत्र वियोग में माता-पिता ने, त्याग दिए अपने प्राण ।

पुत्र वियोग में हीं दसरथ ने, भी त्यागे थे अपने प्राण,
कर्मफल से कभी भी बचने, का नहीं है कोई विधान ।
कभी बुरे कर्म करनेवाले भी, सुखी जगत में दिखते,
और अच्छे कर्म करनेवाले भी, दुखी जगत में दिखते ।

पर ऐसा नहीं है, कर्मफल तो सदा, मिलता देर-सबेर,
भगवानके घर कभी देर नहीं है और नहीं हीं अंधेर ।
इसलिए प्राकृत पदार्थों से यहाँ, आसक्ति नहीं बढ़ाएं,
निष्काम भाव मन अपने रख सभी कर्म करते जाएँ ।

हमारी जीवन यात्रा जहाँ, इस जन्म में होती खतम,
वहीं से पुनः होती प्रारम्भ, यह अपने अगले जनम ।
निष्काम कर्म कर इस जीवन में, कर्म करदें शून्य,
अगले जन्ममें प्रारब्ध कर्मका कर्मफल होगा शून्य ।

तब शायद इस जीवन-मृत्यु के, चक्र से हट जायेगें,
अंश अपने पूर्णांश से मिल, तब एकाकार हो जायेगें ।

---------o--------

जीवन चक्र और मोक्ष

चौरासी लाख योनि कर पार, पाते मनुष्य तन का उपहार,
सात्विक जीवन कर व्यतीत, अपने को करने का उद्धार ।
पर आकर हम जाते भटक, और अधर में जाते हैं लटक,
मोह-आसक्ति से होते युक्त, जीवन फिर जाती है अटक ।

भौतिकता के मोह-जाल फंस, जाती यह जीवन उलझ,
मकड़जाल में फँसते जाते, नहीं पाता जो कभी सुलझ ।
मनुष्य योनि जाता है बीत, इच्छित मोक्ष नहीं पाते हम,
और जन्म-मरण के चक्कर में, उलझकर रहजाते हम ।

मनुष्य योनि मिलता है सबको, करने को खुद का उद्धार,
इस प्राप्त श्रेष्ठ योनि को हम, कर देते यहाँ यूँ ही बेकार ।
कर्मयोनि रूप मानव जीवन, मिलता है करने को सत्कर्म,
बदल देते इसे भोग योनि में, समझते नहीं जीवनका मर्म ।

पंच महाभूत से निर्मित तन, और इसके अंदर बैठा मन,
इन दोनोंको ही मान सर्वस्व, जगत में चलते जितने रण ।
और हृदय स्थित शुद्ध आत्मा, को हम जाते भूल समस्त,
पतन का मार्ग होता प्रारम्भ, और जीवन भर रहते त्रस्त ।

मनुष्य स्वभावतः है चैतन्य, इस सत्य को जाते हम भूल,
आत्माका तन, मन, इन्द्रियोंसे, जुड़ जाता फिर नाता कुल ।
जिससे मनुष्य में अहंकार का, मिथ्या भ्रम होता निर्माण,
और जीवन के वास्तविक सत्य, से दूर होता, नर अंजान ।

दुर्लभ मनुष्य जीवनजो प्राप्त, बिना मोक्ष होजाता समाप्त,
और जीवनका जो गूढ़ रहस्य, कभी नहीं हो पाता ज्ञात ।
तथा भोग योनिका जीवन जीने, को होजाते हम अभ्यस्त,
मर्त्यलोक ही स्वर्गसा लगता, और इसीमें रहते हम मस्त ।

आदि शंकराचार्य समझ गए, जीवन के गूढ़तम रहस्य को,
अज्ञानियों को राह दिखाए, एक व्यवस्थित जीवन जीने को ।
जीवन का नहीं मार्ग सुगम, समझो पहले इसका तुम मर्म,
जीवन जो जी रहे हो तुम, नहीं पालन करता जीवन धर्म ।

बारम्बार जग लेना जन्म, और बार-बार मृत्युको वरण,
तथा बार-बार माता के गर्भ में, निद्रा में करना शयन ।
संसार का यह है जो चक्र, है पार पाना इससे दुष्कर,
मुक्त होने को चाहो तो भी, बाधाएं आ जाती अड़कर ।

इस चक्रीय क्रिया में उत्पन्न, करते हो दर्द, पीड़ा सहन,
जन्मने और मरने के वक्त, होती है जो तकलीफ गहन ।
मध्य में आते व्याधि बुढ़ापा, कष्ट भनायक वह दे जाता,
विधाताका यह कैसा चक्र, जिसको कोई समझ न पाता ।

यह संसार है माया से पूर्ण, समझ नहीं पाते इसे सम्पूर्ण,
दुस्तर इस माया को काटने को, होते हमारे ज्ञान अपूर्ण ।
जीवन है एक महासागर, जिसका नहीं दीखता है कगार,
और पथ में बाधाएं असंख्य, करना असंभव इसको पार ।

अज्ञानी मनुष्यों इसको समझो, जीवनका जानों यथार्थ तुम,
उचित ज्ञान अर्जनसे भगाओ, अंदर बाहर का विकार तुम ।
प्रकृति के पंचतत्व से निर्मित, मनुष्य की जो स्थूल काया,
मन के अधीनस्थ होकर यह, समझता नहीं ईश्वरीय माया ।

प्राकृत पदार्थों को देख-देख, मन पाने को करता रहता,
जितना पाता, और पाने को, कामना सदैव बढ़ता जाता ।
पहले मोह फिर आसक्ति का, क्रम सतत चलता रहता,
सुरसा की भांति बढ़ती जाती, जबतक यह जीवन रहता ।

असुर जैसे तामसी जीवन में, आनंद से पूर्ण सदा रहता,
जो कर रहा उसमें नैसर्गिक, सुखका आनंद उसे लगता ।
इससे भी बाहर दुनिया है, इस बात का उसे ज्ञान नहीं,
जीवन-मृत्युके चक्र फंसा वह, इसका उसे अनुमान नहीं ।

आत्मा जो होता चैतन्य स्वरुप, उसपर असुरों का शासन,
अपने अपने इच्छानुसार जो, मानव जीवन करता संचालन ।
मनुष्य हृदयस्थित आत्मा को, समझ नहीं कभी वह पाता,
प्रयास समझने का करता तो, चतुर असुर उसे भटकाता ।

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, वासना, भ्रम, ईर्ष्या, अहंकार,
कृपणता, कठोरता, अभिमान, येसभी राक्षसों का संसार ।
यही असुर मानव ह्रदय पर, करता सतत रहता है राज,
और भगवान के लिए नहीं, देता कभी करने कुछ काज ।

सारा जीवन इन असुरोंके वश, होकर कर देते हम व्यर्थ,
और मोक्ष प्राप्ति को करनेमें, होजाते हम पूर्णतः असमर्थ ।
जीवन रूपी भवसागर से, हम नहीं कभी कर पाते पार,
क्योंकि अंतर में मिथ्यारूपी, बैठा रहता घृणित अहंकार ।

अंतर में चलता रहता द्वन्द, नेक प्रवृतियां पड़ जाती मंद,
आसुरी प्रवृतियां रहती स्वछंद, मोक्ष प्राप्ति पथ होती बंद ।
इससे ह्रदय में स्थित आत्मा को, असहनीय चोट पहुँचता,
क्योंकि आत्मा तो केवल साक्षी, रहता बनकर एक द्रष्टा ।

अंतर स्थित दैवी सम्पदा जो, सहायक होते मोक्ष प्राप्ति में,
होकर सुषुप्त रह जाती केवल, और बढ़ती वो समाप्ति में ।
आसुरी संपदा दैवी संपदा पर, लगता है पड़ने अति भारी,
और सामने स्वयं की बर्बादी का, देखने की होती लाचारी ।

अंतर में भरे हुए कल्मष जो, जबतक होते न पूर्णतः दूर,
मोक्ष प्राप्ति का पाक उद्देश्य, तबतक रहेगा हमसे दूर ।
इसलिए अंतरके विकारों को, अपने से हम अलगाव करें,
फिर मोक्ष प्राप्तिके मार्गों से, खुदको अनवरत जुड़ाव करें ।

मोक्ष प्राप्ति हेतु मनुष्य को, ईश्वरीय शरण में जाना होगा,
अनवरत प्रार्थना कर प्रयास से, उन्हें सबको मनाना होगा ।
अपने मन सहित सभी कर्मों को, ईश्वर में करके अर्पण,
आपके शरण में मैं पूर्णतः, अंतर्मन से करता हूँ समर्पण ।

गीता में कहा है श्रीकृष्ण ने, कर्म मनुष्य जो तुम करते,
जो कुछ खाते या हवन करते, देते दान या तप करते ।
रखकर भाव निष्काम तुम, अर्पित मुझे तुम सभी करो,
शुभ-अशुभ कर्मबन्धनसे मुक्त, मोक्षको तुम प्राप्त करो ।

इसलिए मुरारी, मुरा संहारक, अंतर के तम का अंत करो,
और अंतर्विकारों को कर दूर, इस भवसागर से पार करो ।
भगवान बड़े ही दयालु, कृपालु, हमेशा ही सबकी सुनते हैं,
भक्तों की सच्ची प्रार्थना को, विस्मरण नहीं कभी करते हैं ।

भगवान का सच्चा भक्त कभी, अधर में नहीं लटकता है,
और अपने निष्काम भाव से, मोक्ष की प्राप्ति करता है ।
इसलिए अज्ञानी मूढ़ मनुष्य, प्रभु के शरण में तुम जाओ,
और आत्मसमर्पण करके पूर्णतः, दिव्य मोक्षको तुम पाओ ।

---------o--------

पिता

पिता नाम सुनते ही आता आँखों आगे वह व्यक्ति,
शांत, शौम्य, दृढ़-संकल्पित, सादगी की अभिव्यक्ति ।
कर्तव्यपरायण, पथप्रदर्शक संग दूर दृष्टि रखनेवाला,
जीवनपथ के बाधाओं से होकर निर्भीक लड़नेवाला ।

प्रगतिमार्ग में खड़े दीर्घकाय चट्टानों से टकरानेवाला,
उनकी छाती को तोड़कर दूध की धार वहानेवाला ।
जेठ मास की दोपहरी और तप रहे हों सूर्य प्रचण्ड,
तवा समान जलती धरा पर रहता जो खड़ा अखण्ड ।

परिस्थिति कोईहो, नहीं कभी, वह अपना आपा खोता,
और सदैव वह हर समय, संयम से काम है लेता ।
दृष्टिगत होता, वे इन्द्रियों पर, रखते सम्पूर्ण नियंत्रण,
इन्द्रियों के वशमें रहनेसे, बेचैन न होता उनका मन ।

एक पिता बच्चों के लिए, होता सदा उसका नायक,
दिया गया मार्गदर्शन होता, उनके लिए फलदायक ।
एक श्रेष्ठ पिता अपने बच्चों को पूरी तरह से जानता,
और अपनी बुद्धिमत्ता से सबका पालन-पोषण करता ।

धरा पर होता एक पिता ईश्वर की अनुपम रचना,
अपना सब कुछ अपने ही बच्चों पर लुटाते रहना ।
बच्चों पर किसी तरह का कोई कष्ट न आने देता,
मांगने से पहले उनकी इच्छाएं, वह पूर्ण कर देता ।

अपनी मजबूरी वह कभी भी, बच्चों को नहीं बताता,
तंगहाली में रहने पर भी, खुद को अमीर बतलाता ।
पिता बच्चों को गिरने से पहले ही थाम उन्हें लेता,
पथकी बाधा कर दूर उन्हें, उठने को फिर से कहता ।

इस गतिशील दुनिया में एक नायाब रिश्ता है पिता,
बच्चों की इच्छाओं पर निज, सर्वस्व अर्पण कर जीता ।
बच्चों का जीवन श्रेष्ठ बनाने को यत्न सदा वह करता,
पथ में बिछे तमाम शूलों को दूर हटाता वह रहता ।

फूलों की खुशबू को वायु सिर्फ अपनी दिशा ले जाता,
पिता प्रदत्त खुशबू को बच्चे, हर दिशा में फैला पाता ।
पिता से जीवन में मिलता, सदा अच्छे उत्कृष्ट संस्कार,
बच्चे कैसे रहें अनुशासित और कैसे हों आचार-विचार ?

अच्छा क्या है? बुरा क्या है? बच्चों को पाठ पढ़ाता,
प्रतिकूल परिस्थिति आने पर हौसलों को सदा बढ़ाता ।
कहते है जब पिता का जूता बच्चों के पैर आ जाता,
खुद को बदल पिता बच्चों का दोस्त वह बन जाता ।

इस बहुरंगी दुनिया में एक पिता ही बच्चों की शान,
बच्चों के वजूद की होती, पिता ही असली पहचान ।
पिता बच्चों के जीवनपथ पर दिनकर बनकर रहता,
तम की छाया आने पर वह बनकर ज्योति उभरता ।

पिता नीम के बृक्ष सम होता कड़वे जिसके पत्ते,
पर तपती जेठ की दोपहरी में छाया ठंढी देते ।
प्यार हो या त्याग पिता का मोल न कोई इसका,
इस दुनियामें निश्चित ही अनमोल सदा यह रिश्ता ।

कुम्भकार के थाप से मिट्टी, घड़ा सुन्दर बन जाता,
पिता के मार्गदर्शन से जीवन, बच्चों का बन जाता ।
जीवनके सफर में जबतक रहता है पिता का साथ,
नहीं पकड़ना पड़ता कभी भी और किसी का हाथ ।

पिता होता दीपक की भांति सतत जलता ही रहता,
जलकर बच्चों के जीवन को रोशन वो करता रहता ।
एक पिता निःस्वार्थ प्यार का जग में सदा प्रतीक,
निश्छल, निर्मल, दोषरहित, धवल, होता सदा ही निक ।

पिता सम्पूर्ण परिवार का होता अचल स्तम्भ समान,
हर हाल में तत्पर रहता, करने को सदैव कल्याण ।
माली बनकर अपने चमन की रक्षा सदा वह करता,
हर मौसम में, निज उपवन में, फूल खिलाता रहता ।

एक परमपिता परमात्मा जिन्होंने बनायी है यह सृष्टि,
एक पिता जो जगमें हमें लाये, डालते है उनपर दृष्टि ।
इस दुनिया में आने से पहले, हम सभी थे अव्यक्त,
और यहाँ से जाने के बाद, पुनः सभी होगें अव्यक्त ।

आने और जानेके बीच का समय जो आता धरा पर,
एक मानव के जीवन का, वही जीवन होता यहाँ पर ।
व्यक्त हुए जग जिनके कारण उनमें प्रमुख एक पिता,
अदृश्य से सदृश्य बनानेवाले थे, ईश्वर रूप माता- पिता ।

जग में आगमन के वक्त से पिता का सर पर हाथ,
भाग्य-विधाता बनकर रहते, अनवरत वे अपने साथ।
छोटे थे तो गोद में लेकर, मुझसे बातें हरदम करना,
समझ नहीं, फिर भी बातों को, सुनकर हरदम हँसना।

डगमग चलने लगे तो मिलने लगा सहारा ऊँगली का,
अवनि पर गिरने से पहले, अवलंब मिल जाता उनका।
पिता ही मार्गदर्शक थे जबहम पहली बार स्कूल गये,
पुरे रस्ते में शिक्षा का अर्थ, वे शनैः शनैः समझा गये।

मानसिक तौर पर शिक्षाग्रहण को वे कर दिए तैयार,
बेटा, शिक्षा बिना तनिक भी, नहीं बढ़ पाओगे संसार।
शिक्षा ही बनता है माध्यम, जगसे खुद को जोड़ने का,
शिक्षा ही करता शौर्य प्रदान, बाधाओं सेभी लड़ने का।

पिता ही शिक्षक बनकर हममें सपनों का उड़ान भरा,
सपने कैसे होंगे साकार, इसका भी विधि विधान भरा।
रामायण की सिद्ध चौपाइयाँ और घाघ-भड्डरी के गीत,
कहते-कहते, कहते रखना बेटा, सदा इन सबों से प्रीत।

कहते हैं संस्कार विहीन शख्स, होता सदा पशु समान,
संस्कार का जो गहन अर्थ, पिता ने ही किया प्रदान ।
जो तन और मन को शुद्ध कर दे, होता वही संस्कार,
सिखाता बच्चों को उनका, पिता, बुजुर्ग, घर-परिवार ।

भाई-बहन, परिवार सभी संग, समत्व भाव सदा रखना,
भेद-भाव न रखना कभीभी, पिताजी का होता कहना ।
सम्मति, समत्व भाव, त्याग तथा अच्छे आचार - विचार,
करता प्रशस्त पथ प्रगति का, हो देश या हो परिवार ।

निष्काम भाव रखना जब भी करो कोई कार्य सम्पन्न,
तुम्हारे कर्मों से किसी को कभी विघ्न न हो उत्पन्न ।
घर से निकल कॉलेज चले संग पिता का ले उपदेश,
स्वयं ही खुद के रक्षक होगे, तुम रखना ध्यान विशेष ।

संकट आने पर, संघर्ष कर, डटकर सामना करना,
क्या करें? क्या न करें? का उलझन में मत पड़ना ।
लक्ष्यको निश्चित रखकर अपने जीवन पथ पर बढ़ना,
प्राप्ति हेतु इसके वास्ते तुम, मेहनत से नहीं डरना ।

सच्ची मेहनत और लगनमें होती जब भी निरन्तरता,
निश्चित रूप से कृपा प्रभु की उसपर सदा सरसता ।
पिता प्रदत्त उपदेश बने, अग्र जीवन के प्रेरणास्रोत,
पालन करने में पथ पर कभी आने नहीं दी लोच ।

पथ में विघ्न आते गूंज उठते, कानों में उनके सीख,
परमपिता की असीम कृपा से, रास्ते भी जाते दीख ।
महाविद्यालय से निकल आये, जब पेशेवर जीवन में,
कहे थे रखना ईमानदारी तुम, कर्म सम्पन्न करने में ।

सरलता जीवन का दर्शन और शौम्य आचार-विचार,
मनोबल कभी न टूटने पाए और रखना धैर्य अपार ।
भौतिकतामें आसक्ति से, अंतर में होंगे जनित विकार,
पतन की राह पर ले जाकर, छोड़ेगा विनाश कगार ।

अकाट्य सत्य, पेशेवर जीवन में, रखा इसका ख्याल,
पथ सदा हरा ही रहा और हुआ नहीं कभी लाल ।
लम्बे समयके लिए विदेश जाने का मिला था मौका,
सख्त पिता के आँखों में देखा था चक्षुजल छलका ।

आज मैं सेवा निवृत हूँ और पिताजी भी नहीं पास,
पर दी हुयी सीखें उनकी, रहने नहीं देती उदास ।
जीवन के इस सफर में रहा जबतक उनका साथ,
टूटने पर, खड़ा होने में, पाया था सर पर हाथ ।

आज नहीं वे, पर रग-रग में, बहता जो उनका खून,
विपरीत परिस्थितिओं से सदा, लड़नेका भरता जूनून ।
उम्र के भिन्न-भिन्न पड़ाव पर, देखा भिन्न-भिन्न रूप,
हिदायतें मिलती रही सदा, पर अलग-अलग स्वरुप ।

बचपन में अपने पिता को मैं मानता अपना नायक,
नहीं जगत में उनके जैसा विशुद्ध प्यार का दायक ।
स्कूल, कॉलेज में जाने पर कुछ बदलने लगे विचार,
लगने लगा पिताजी रखते हैं, बहुत ही पुराने विचार ।

आज की और उनकी सोंच में धरा-गगन का अंतर,
लगता था अपने विचारों को, बरबस थोपते हम पर ।
बड़े हुए, बंधन में बंधे और फिर बढने लगे परिवार,
जिम्मेदारी आयी तो लगे बदलने फिर से मेरे विचार ।

कैसे रखकर धैर्य अकूत वे, जिम्मेदारी निभाये होंगें ?
कैसे रख साहस असीम वे, घर-बाहर सम्भाले होंगें ?
थोड़ी सी ही जिम्मेदारी बढ़ी तो होनेलगे हम पस्त,
समझ न पाता, कैसे वे सब, निभाये होंगें समस्त ।

निश्चित रूपसे पिता हमारे नायक नहीं, महानायक थे,
खुद जलकर हमारे पथके तम में रौशनी दायक थे ।
जीवन भर निष्काम रहे, नहीं किसी से कोई अपेक्षा,
केवल चाहते इतना भर, करे नहीं कभी कोई उपेक्षा ।

उनकी इस उम्मीद पर मैं, खरा उतरा था कितना,
बताये नहीं कभी भी वो, हमसे इसकी कर गणना ।
बच्चे वही जो पिता के बुझते मन में आस जगाये,
कमर झुके तो आगे बढ़कर, उनकी लाठी बन जाये ।

उनकी दी हुयी विरासत पर दृढ़ता से खड़ा हूँ आज,
वो चले गये पर आजभी, नसीहत उनकी अपने साथ ।
जीवनके इस महासफर में दीखता जब भी तम घोर,
हिदायतें उनकी आगे आकर देती तन को झकझोर ।

और कहती, 'चरैवेति, चरैवेति', चलना ही जीवनका नाम,
फिर उठकर चलते रहते, करते उन्हें शत-शत प्रणाम ।

---------o--------

सुख-दुख

सुख-दुख तो आंख मिचौली, जीवनके दो आयाम,
दोनों के मधुर मिलन से, जीवन यह पाता मुकाम।
मानव सुख-दुख के पीछे, विधि का होता विधान,
अल्पज्ञ मानव के लिए इसे, समझना नहीं आसान।

जगत जीवित मनुष्य को, नहीं होता भविष्य का ज्ञान,
पर भूत घटित घटनाओं से, लगा सकता वो अनुमान।
गीतानुसार व्यक्ति के साथ, जो कुछ घटित भी होता,
निश्चित रूप से वह उसके, अच्छे के लिए ही होता।

ऐसा कुछ जान समझ जब, जीता जीवन निज मानव,
सुख-दुख के द्वय क्षणों में, रह अडिग पायेगा मानव।
इसलिए पहले हम जाने, सुख-दुख की क्या परिभाषा,
क्यों पाते एक से संतोष, और दूसरे से पाते निराशा।

सुख-दुख केवल अनुभूति, नहीं इसका कोई अस्तित्व,
ना ही इसका ठोस आधार, ना ही कोई ही स्वामित्व।
बाहरी परिस्थितियों से कोई, इसका सम्बन्ध न रहता,
एक ही परिस्थिति में, एक खुश, दुखी दूसरा रहता।

यदि कोई घटना घटे अनुकूल, हम उसे सुख कहते,
और यदि घटे हमारे प्रतिकूल, तब उसे दुःख कहते ।
कोई इच्छाकी पूर्ति होती, हम सुखका अनुभव करते,
पर जब रह जाती अधूरी, तो दुख का अनुभव करते ।

सुख है एक अवस्था, पाते संतोष, शान्ति व प्रसन्नता,
दुःख भी एक अवस्था, पाते निराशा और अप्रसन्नता ।
सुख और दुःख दोनों ही, व्यक्ति के अनुभव होते,
और मानसिक, भावनात्मक, स्थिति पर निर्भर करते ।

जब मनमें मानसिक ग्लानि, दुःखका अनुभव होता,
जब मन रहता संतुष्ट, तब सुख का अनुभव होता ।
ये सुख और दुःख दोनों ही, जीवन का हिस्सा होते,
दोनों का ही अस्तित्व, एक-दूसरे पर निर्भर करते ।

दुःख रजनीका तम तो, सुख दिनका धवल प्रकश,
न निशा सदा ही रहती, न दिन का सतत निवास ।
मौषम की भांति ही यह, सुख-दुःख भी आते जाते,
मानव जो होते विलक्षण, कभी इनसे नहीं घबराते ।

जीवन है एक समंदर, सुख-दुःख द्वय इसकी लहरें,
आते-जाते दोनों सदा रहते, समंदर वहीँ पर ठहरे ।
जो प्रिय लगे सुख होता, अप्रिय है दुःख कहलाता,
पर यह प्रिय और अप्रिय, मानव के वश न होता ।

जीवन रूपी सरिता में, सुख-दुःख इसके द्वय तीर,
जब तीरें संग-संग होती, सरिता मिलती निधिनीर ।
सुख-दुःख जीवन में होती, है धुप-छाँव की भांति,
मेघ और दिनकर की, जैसे आंख मिचौली होती ।

उदय हो या अस्त, दोनों वक्त होते दिनकर लाल,
सुख-दुःख दोनों में सम रह, उत्तम करते कमाल ।
जो कोई भी जग में दुःख का, हरदम रोना रोता,
उसके दर सुख आकर भी, बाहरसे लौट है जाता ।

सुख-दुःख तो आते-जाते, रहते ही हैं जीवन भर,
जीवन क्या है? जानें हम, पहले इसे समझ कर ।
स्थूल तन जो यह काया, है पंचतत्वों से निर्मित,
मन, बुद्धि और अहंकार, रहती है इसमें समाहित ।

यह तन रहता निर्जीव, जबतक चेतना नहीं आती,
चेतना इसमें आते ही, जीवन जागृत हो जाती ।
जड़-चेतन के संगम से, जीवन प्रारम्भ हो जाती,
अनवरत चलती रहती, जबतक विभक्त न होती ।

पंचतत्वों के संग-संग, मन, बुद्धि और अहंकार,
तन बनाने वाली, अपरा प्रकृति के आठ प्रकार ।
चेतना कहें या आत्मा, यह परा प्रकृति है होती,
और यह जीवन, परा-अपरा का समागम होती ।

आत्मा जिसे हम कहते, यह है तभी तक जीवन,
शरीर रूपी वाहन में, आत्मा रूप स्थित इंजन ।
यह स्थूल तन प्राकृत, पदार्थों से निर्मित है होती,
इसलिए झुकाव इसका सदा, उसी ओरही होती ।

भौतिक पदार्थों में ही, सुख, सम्पन्नता को ढूंढ़ता,
जितना जायदा वह पाता, प्रसन्न उतनाही होता ।
पर शरीर का इंजन आत्मा, जो पराशक्ति होती,
वो अंश परमात्मा का, आकर्षित उधर ही होती ।

परमात्मा से मिलकर, पाता सुख, परम-आनन्द,
उससे बड़ा जगत में, नहीं कोई सुख आनन्द ।
जैसे सरिता दरिया में, मिलकर वजूद खो देता,
आत्मा भी परमात्मा से, मिल अस्तित्व खो देता ।

भौतिक पदार्थों से प्राप्त, सुख भौतिक कहलाता,
प्रकृति इसकी नश्वर, जायदा वक्त न टिक पाता ।
भौतिक सुखको पाकर, हम सदा खुश न रहते,
एक की प्राप्ति के बाद, दूसरे सुखको तलाशते ।

यह सुख तलाशने में ही, जीवन हो जाता तमाम,
भोग न पाते इसको, क्योंकि मन रहता बेलगाम ।
प्राप्त पदार्थों से हमे यह, सन्तुष्ट नहीं रहने देता,
और पानेकी अभिलाषा में, विचरण करते रहता ।

जोहम चाहते करना प्राप्त, अगर प्राप्त नहीं होता,
हम दुःख का अनुभव करते, व मन उद्विग्न होता ।
सोचें, अगर जीवन में, सुख ही सुख केवल होता,
जीवन एकरस हो जाता, मतलब ही खत्म होजाता ।

सही मायने में जीवन, नीरस, अर्थहीन हो जाता,
यदि दुःख न होता तो, सुखभी अहसास न होता ।
भौतिक सुख सदा ही, क्षणभंगुर प्रकृति का होता,
चिंता, तनाव, निराशा, का, कारण बड़ा बन जाता ।

उलट आध्यात्मिक सुखतो, स्थायी आंतरिक होता,
और यह सुख सांसारिक, सुखों से परे है होता ।
अध्यात्म यानी स्वयं को, ईश्वर से जोड़ना होता,
जोड़ने का माध्यम इसका, ध्यान, योग, सेवा होता ।

गीता में इसके वास्ते, तीन मार्ग गए बतलाये,
ज्ञान, कर्म और भक्ति, जो अपनाये वही पाए ।
अपनाकर कोई मार्ग, ले खुदको ईश्वर से जोड़,
सुखानंद जोहोता प्राप्त, उसका नहीं कोई तोड़ ।

आध्यात्मिक सुख जिसको भी, हो जाता है प्राप्त,
तनाव, चिंता, अवसाद आदि से पा जाता निजात ।
श्रद्धा, भक्ति से हो परिपूर्ण, प्राप्त कर पूर्ण ज्ञान,
कर्म करता निष्काम जो, वही पाता सुख महान ।

विचारशक्ति हो मजबूत तो होता सफर आसान,
अर्ध-मन से कभी भी, सफर नहीं पाता मुकाम ।
सुख-दुःख दोनों में सम रह, करता कर्तव्य कर्म,
वही समझ पाता है सुख का, होता क्या है मर्म ।

जब व्यक्ति आध्यात्मिक, सुखको कर लेता प्राप्त,
काम, क्रोध और लोभ, उसका हो जाता समाप्त ।
काम, क्रोध और लोभ को, कहा गया नर्क का द्वार,
भौतिक सुख-दुःखकी प्राप्ति, इनका ठोस आधार ।

स्रोत सीमित, इच्छा अधिक, होता दुःखका कारण,
काम पर लगे लगाम तो, दुःखका होता निवारण ।
कामना अगर बढ़ती रही, सुरसा की भांति अंदर,
और पूर्ण नहीं कर पाए तो क्रोधका होगा मंजर ।

क्रोध आगमनसे पतन का, मार्ग स्वतः खुल जाता,
सुख संग शांतिभी समाप्त, जीवन विखर है जाता ।
अगर कामना पर लग जाती, है अन्तर में विराम,
दुःख की होगी समाप्ति, सुख प्राप्ति होगी अंजाम ।

भला इसी में मानव को, सुख-दुःख को माने अंग,
जीवन के दुर्गम पथ पर, चले साथ-साथ ले संग ।
दुःख इंसान का सबसे बड़ा, गुरु होता जीवन में,
दुखी पलों में मिली सीख, आधार शेष जीवन में ।

वैसे किसी से सत्य ही कहा है :

सुख सपना, दुःख बुलबुला, दोनों ही मेहमान,
दोनों को बितन दीजिये, जोभी भेजे भगवान ।

---------o--------

विकास या विनाश

मानव धरा पर ईश्वर की, सबसे अनुपम भेंट,
समृद्ध कर भेजा जगमें, दे बल बुद्धि विवेक ।
पंचतत्वसे बनी सृष्टि, जिसमें है जगत समाया,
प्रकृति के त्रिगुणों की, बसती जिसमें है माया ।

इसी पंचतत्व से निर्मित, जगत के सारे जीव,
त्रिगुणों की माया जिनमें, रहती सदैव सजीव ।
मनुष्य छोड़ अन्य प्राणी में, रज-तम का जोर,
सिर्फ मनुज ही ऐसा, जिसमें त्रिगुणों का डोर ।

त्रिगुण अपने गणना से, डालता नर पर प्रभाव,
जिसमें जिस गुणकी श्रेष्ठता, वैसा उसका भाव ।
सत्वगुण पूरित मनुष्य, सोंचता सबका कल्याण,
निष्काम कर्म करनेवाला, रखता आत्मिक ज्ञान ।

जिन मनुष्यों के अंतर में, रजोगुण होते प्रधान,
निजहित होता परमहित, परहित का नहीं ज्ञान ।
तमस गुणों से प्रभावित, जो होते मनुष्य महान,
अपना हित चाहे ना हो, दूसरोंका हो नुकसान ।

धर्म जिसे धारण करके, बनता है मनुज महान,
इसके होते चरण चार, सत्य, तप, शौच व दान ।
सतयुगमें सभी चरणों का ह्रदय में होता वास,
तभी तो ईश्वर भी तब, मनुष्य संग करते वास ।

त्रेता युग के आगमन पर, एक चरण गया टूट,
कलुषित विचार प्रविष्ट हुए और सत्य गए छूट ।
रावण जैसा महाज्ञानी भी, सत्यपथ से हुआ दूर,
मानवता निकला ह्रदयसे, बन गया कुटिल क्रूर ।

एक चरणथे टूटे और, द्वापर जब किया प्रवेश,
तप, नर गुण से दूर हुए, अंतर भरा ईर्ष्या, द्वेष ।
स्वार्थ शिखर चढ़ने लगा, परमार्थ होने लगे दूर,
परहित पाताल गर्भित हुआ, अंतरमें भरा गुरुर ।

अज्ञान, ज्ञान पर हावीहो, लगे करने सोच मलिन,
रज, तम बढ़ने लगा और सत्व होने लगा दीन ।
संबंधोंमें निहित प्रगाढ़ता, शनैः शनैः लगी घटने,
आपसी प्रेमकी जगह पर, धोखाधड़ी लगी बढ़ने ।

त्रेता में हुए रावण एक, पर द्वापर में हुए अनेक,
स्वयं को श्रेष्ठ समझनेवाले, मलिन भाव अतिरेक ।
दूषित सोचकी प्रगाढ़ता से, हुआ यहाँ महाभारत,
विनाशरूपी खंड प्रलय, एक सभ्यता हुयी गारत ।

सृष्टि का यह कालचक्र, रोके नहीं कभी रुकता,
निर्बाध निरंतर यह तो, आगे सदा बढ़ता रहता ।
कालचक्र बस सृष्टिमें हुआ, द्वापर युग का अंत,
कल्मष रूपी कलयुग का, आगमन हुआ तुरंत ।

धर्म के चार चरणों में से, तीसरा चरण भी टूटा,
सत्य और तपके संग में, पवित्रता हृदय से छूटा ।
शनैः शनैः चित्तात्मा से, लगा होने सत्व का ह्रास,
रज, तम तीब्रता से हृदय में करने लगा निवास ।

भौतिक पदार्थों में सुख-शांति, करने लगा तलाश,
पाना उसेही जीवन लक्ष्य, मान करने लगा प्रयास ।
आध्यात्मिक सुख, जो परम सुख, सेहोने लगा दूर,
प्रतिफल में भौतिकता का मद, बढ़ने लगा भरपूर ।

धन प्राप्ति का कलयुग में, सतत बढ़ रहा महत्त्व,
अंतःकरणसे जिसके कारण, घटता जारहा समत्व ।
धन-संपदाही तय लगे करने, संबंधों की परिभाषा,
धनहीन को मुश्किल हुआ, सम्मान पानेकी आशा ।

धन ही मनुष्य की श्रेष्ठता के गुणको लगा दर्शाने,
जिसकेपास जितना धन, लगा उतना श्रेष्ठ कहलाने ।
घटता सत्व, बढ़ता रज, लगा सोच संकुचित करने,
स्वार्थ परायणता शनैः शनैः, लगा अंतस में बढ़ने ।

मैं हीं जग में सर्वश्रेष्ठ, रहता सदा भाव अंतस में,
मुझसे आगे बढे न कोई, रहता है भाव रजस में ।
जब मनुष्य के विवेक पर तमस भाव छा जाता,
दूसरों की हानि में हीं, जीवनका सुख वह पाता ।

परिस्थिति ऐसी सदैव रहे, होता रहे मेरा विकास,
भलेही उसके कारण जगमें, दूसरोंका हो विनाश ।
व्यक्तिगत आधार पर निज, सुख होता है सर्वस्व,
जागृत अंतर इच्छा रहती, मेरा बना रहे वर्चस्व ।

अक्षुण्ण बनाये रखने को, करते तरीके नए ईजाद,
भले ही इसके दुष्प्रभाव से, अन्य हो जाये बर्बाद ।
दुनिया के सभी देश भी, इस गुण से नहीं अछूते,
त्रिगुणों की प्रकृति में सभी, फँसते और उलझते ।

रजस और तमस द्वय सभी, देशों पर हावी रहता,
दुर्गुण, सद्‌गुण की अपेक्षा, प्रभावी सदैव ही रहता ।
हर देश चाहता यही, सिर्फ वही रहे बना महान,
और विश्वके शेष देश, करें सभी उसका गुणगान ।

जगमें उनके झंडे निचे, रहे सभी देश नतमस्तक,
उनकी श्रेष्ठता परकभी, कोई देश नहीं दे दस्तक ।
आर्थिक, तकनीक रूप से, करते खुद को समृद्ध,
अन्य देश पीछे रह कुछ, कह नहीं पाते विरुद्ध ।

नित्य नए-नए अविष्कार से, स्वयंको करते उन्नत,
उनके समकक्ष न आये कोई, ऐसे कार्योंमें उद्यत ।
विकसित देशों के कई, संगठन यहाँ इस जग में,
कैसे विश्वपर करें शासन, रखते विचार हैं मग में ।

तकनीक विकासके नाम पर, आयुध नायाब बनाते,
पिछड़े और प्रगतिशील को, दिखाकर उसे डराते ।
विकासशील कोई देश अगर, वही हथियार बनाता,
येन-केन-प्रकारेण उसपर, अनेकों प्रतिबंध लगाता ।

उनके जैसा कोई और बने, ये उन्हें स्वीकार नहीं,
उसी पथ कोई आगे बढ़े, तोकर देते शिकार वहीं ।
अन्यको आगे बढ़ता देख, आखों से आती चिंगारी,
क्रोध में होकर आग-बबूला, खोते भाव हितकारी ।

क्रोधकी अग्निमें स्वयं के, विवेक को देते आहुति,
अंतर का दर्प शिखर चढ़ता, करते कार्य अनीति ।
कभी नस्लीय, कभी जातिगत, कभी भाषाको लाते,
खुदको श्रेष्ठ सावित करने में आपसी दूरी बढ़ाते ।

विस्तारवादकी अभिलाषा, बढ़ारही खूनकी पिपासा,
विकास, विनाश का स्रोत बन, उपजा रही निराशा ।
धर्म के धंधेबाज भी जग में, खेल रहे निज खेल,
हर युक्ति को लगा रहे, कभी हो नहीं सबमे मेल ।

वे अपने धर्म या पंथ को, कहते जग में सर्वश्रेष्ठ,
पंथके लोगों को भड़काते, कह हम ही कुलश्रेष्ठ ।
हमारे सिवाय अन्य को, जीने का नहीं अधिकार,
अगर नहीं मानते इसको तो, करना होगा संहार ।

ऐसे विचारोंसे प्रभावितहो, उग्रवाद रहा फल-फूल,
विकास की जगह विनाश का, आज जग में मूल ।
स्थान कोईहो, मुद्दा कुछभी, रहता एक ही परिवेश,
पूर्व विकसित चाहते रखना, अपना स्थान विशेष ।

विकास कर मानव धरासे, चाँद पर है पहुँच गया,
अपने-अपने राष्ट्र का झंडा, शान से लहरा दिया ।
पहुँचा हुआ हरदेश वहां, बनाना चाहता उपनिवेश,
धरा हो या अंतरिक्ष, रहे मेरा देश ही सदा विशेष ।

विकसित, विकासशील देश, बनारहे शस्त्र विनाशक,
परमाणुबम, हाइपरसोनिक मिसाइल, सभी संहारक ।
आपसमें ही लड़ मानव, कर रहा धरा का विनाश,
और उड़कर ऊपर चाँदपर, करना चाहता निवास ।

अगर मानव जाति यह, पहुँचता है कभी चांदपर,
निश्चित रूपसे छोड़ देगा, संपूर्ण इसे बर्बाद कर ।
ज्ञानहीन मानव मतिभ्रष्ट, खोता निज बुद्धि, विवेक,
इहलोक या अन्य लोक, फैलाता दुर्गंध अतिरेक ।

सत्य स्वीकारनेकी क्षमता, मानवोंमें अब बची नहीं,
साम, दाम, दंड, भेद लगा, अपना तर्क थोपते यहीं ।
इस जगत में ज्ञान सदृश्य, नहीं कुछभी पावनकर्ता,
विकार रूपी अज्ञान हर, जागृत विवेक को करता ।

ह्रदयमें ज्ञानका स्फुलिंग, बढ़ जब प्रज्वलित होता,
अंतरके होते पाप दूर, भाव समत्वका जग जाता ।
तब मानव, मानव में कोई, भेद भाव नहीं रहता,
वसुधा पर रहनेवाले सब, एक परिवार का बनता ।

समत्व एक सनातन सत्य, रखता सब में समभाव,
एक-दूसरेके प्रति कभी, प्रेमका होता नहीं अभाव ।
जबतक समत्व के भावको, जगत नहीं अपनायेगा,
विकास की पराकाष्ठा भी, अमन नहीं ला पायेगा ।

स्वार्थमें लिपटा विकास, करता जगका कल्याण नहीं,
बल्कि विनाश आरंभ कर, करता चमन वीरान यहीं ।
मानवता का ध्यान रख, होता जगमें जबभी विकाश,
अमन तभी शाश्वत होता, आपसी प्रेम छूता आकाश ।

पर कलयुग में पाप नर को, रखता सद्गुणों से दूर,
रजस, तमस होकर प्रभावी, मानव को करते मजबूर ।
इस कलयुगमें झूठ-फरेब को, किया जाता स्वीकार,
सत्यपथ पर चलनेवालों का, किया जाता है शिकार ।

ईर्ष्या, द्वेष, क्लेश आदिका, बढ़ रहा सतत बोलबाला,
सत्य, अहिंसा, सद्गुण आदि, बनकर रहरहे निवाला ।
चमन उजड़ता जा रहा जगमें, अमन की तलाश में,
और वर्षा ऋतु तलाश रहे हम, फुले हुए कास में ।

वक्त आगया विचार शक्ति को, करने को मजबूत,
समत्व भाव रखकर विकास, लानेको अमन अकूत ।
अगर विकास की धारा में, नहीं देते हम बदलाव,
विनाश हमारा निश्चित है, और वसुधा पर बिखराव ।

---------o--------

धर्म

जो धर्म की रक्षा करता, धर्म उसकी रक्षा करता,
जब धर्म न रक्षित होता, तो धर्म भी है मर जाता ।
मरा हुआ धर्म मारनेवाले, को भी ध्वस्त कर देता,
इसलिए ज्ञानी भूलसे भी, धर्म का त्याग न करता ।

जब-जब इस धरती पर, धर्म का पतन है होता,
अपने भिन्न-भिन्न रूपोंमें, अधर्म प्रफुल्लित होता ।
तब-तब कोई अवतारी, इस मृत्यलोक पर आता,
और धर्म विनाशक को, इस धरा से दूर हटाता ।

पीड़ा में पड़े धर्मरक्षकों, की पीड़ा दूर वो करता,
और मृत धर्म का पुनः, स्थापना जगत में करता ।
बड़े-बड़े मुनि, ज्ञानी और, कवि, कोविद विद्वान,
कहते धर्मका पालन कर, बन पाता श्रेष्ठ, महान ।

भगवत गीता, जिसे हम, कहते जीवनका संविधान,
धर्म शब्द से होता प्रारंभ, धर्म का ही देता ज्ञान ।
कुरुक्षेत्रमें धर्मविमुख हो, अर्जुन जब हुए पथच्युत,
देकर धर्मका ज्ञान उसे, धर्मपथ पर लाये अच्युत ।

रामायण हो या महाभारत, दोनों ही था धर्मयुद्ध,
अधर्मियों का अंत कर, किया गया धराको शुद्ध ।
वेद, पुराण, अन्य शास्त्र भी, देते हमें यही ज्ञान,
धर्म पालन करने से ही, होगा जग का कल्याण ।

चार पुरषार्थ का वेदों में, उल्लेखित जिनका नाम,
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में, धर्म का ही प्रथम स्थान ।
आगे कहते मार्ग धर्म का, सदा कठिन ही होता,
कंचन की भांति तपता जब, तब निखार है आता ।

धर्माचरण करनेवाला ही, जगत में श्रेष्ठ कहलाता,
इस पथपर चलकर ही, नर मोक्ष, परमगति पाता ।
निश्चित रूप से धर्म का, जीवन में शीर्षस्थ स्थान,
पर किसको कहते धर्म? इसका उचित हो ज्ञान ।

आधा-अधूरा ज्ञान मनुष्य को उलट राह ले जाता,
जीवन का पथ सुमार्ग छोड़, कुमार्ग पर ले जाता ।
इसलिए सबसे पहले जानें, धर्म की क्या परिभाषा,
कैसे जगाती है मनुष्यों में, अच्छे जीवन की आशा ।

अनुशासित जीवन क्रम ही, कहलाता सदा है धर्म,
लौकिक उन्नति, आत्मिक परमगति, पाते कर कर्म ।
लौकिक उन्नति, होती अविद्या, बांधती कर्मबंधन से,
परमगति प्राप्ति, होती विद्या, मुक्ति मोह-बन्धन से ।

प्रत्येक प्राणी की रचना में, दो शक्ति का योगदान,
पहला अपरा शक्ति कहलाता, दूसरा परा महान ।
अपरा प्राणी की स्थूल काया, पंचतत्वों से निर्मित,
परा जो पारलौकिक शक्ति, चेतन स्वरुपमें स्थित ।

पंचतत्व निर्मित काया संग, मन, बुद्धि, अहंकार,
अष्ट अपरा प्रकृति होती, स्थूल तन का आधार ।
हाड़-माँस निर्मित स्थूल तन, संज्ञाहीन ही रहता,
चेतनता आती उसमें तब, परा प्रवेश जब करता ।

स्थूल काया का सम्बन्ध, सदैव प्रकृति संग रहता,
प्रक्रति प्रदत्त पदार्थों प्रति, आकर्षण उसका रहता ।
मनुष्य इस संसार में, अपने को शरीर ही मानता,
परिवार, समाज, देश प्रति, निज का संबंध मानता ।

इनके प्रति कर्तव्यों का, निर्वहन सदा वह करता,
आपसी सद्भाव व्यवस्थाके लिए आवश्यक रहता ।
इन कर्तव्य-पालन को, जग लौकिक धर्म कहता,
भगवत प्राप्ति की ओर हमें, ले नहीं जा सकता ।

स्थूलके उलट चेतना का, जो आत्मा है कहलाता,
परमात्मा का अंश होनेसे, उनकी ओर ही रहता ।
और जब हम खुद को, शरीर नहीं, आत्मा मानते,
तब हम अपने निर्माताके प्रति कर्तव्य हम करते ।

आत्मा का परम उद्देश्य, भगवान की सेवा करना,
जो शाश्वत आनंद का स्रोत, प्रेम उनसे ही करना ।
आत्मा, परमात्मा का अंश, झुकाव उधर ही होता,
भगवानके प्रति भक्ति, धर्मका सर्वोच्च रूप होता ।

इसी को आध्यात्मिक धर्म, सर्वोच्च धर्म कहा जाता,
पालन कर जिसका मानव, मोक्ष मुक्ति सदा पाता ।
इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ की, अपेक्षा न होनी चाहिए,
समर्पण और निष्काम भावकी भावना होनी चाहिए ।

जो भी गुण धारण करने योग्य, वही धर्म कहलाता,
जीवनके प्रति दृष्टिकोण, व्यक्ति का वही बन जाता ।
धर्म धारणकर आत्मोपयोगी, गुणों को वह अपनाता,
स्वयं, परिवार, समाज, देश, के लिए फायदेमंद होता ।

पर प्रश्न उठता है, मनुष्य जगतमें, धारण क्या करे ?
उसी को जो धारण पश्चात्, जीवन पथ सुगम करे ।
धर्म वही जो हमें आदर्श जीवन की कला बताये,
क्या सही और क्या गलत का ज्ञान सतत कराये ।

स्वरूपों और प्रतिक्रियाओं को धर्म अंतर्गत रखते,
मानव जीवनका निर्माण, जो सम्पूर्णता से हैं करते ।
धर्म जीवनके लिए कुछ, पूजा-पद्धति, रीति-रिवाज,
किसी एक या ज्यादा पारलौकिक शक्तिमें विश्वास ।

सद्‌गुणों को प्रदर्शित करने का धर्म एक तरीका,
आचरण, विचार, उसूल, मूल्य, अपनाने का तरीका ।
परिस्थितियों से संघर्ष की शक्ति संचार है करता,
व्यक्तिका व्यक्तित्व एवं अस्तित्व सुनिश्चित करता ।

अलग-अलग धर्मग्रंथों में, धर्मका किया गया वर्णन,
किन गुणोंको करें धारण, किया है जिसका चित्रण ।
मनुस्मृति ग्रंथ में धर्म के बताये गए हैं लक्षण दस,
मनुष्य धारण कर जिसको, कर्म कर पता सुयश ।

धैर्य, क्षमा, दमः, अस्तेय, आंतरिक एवं वाह्य पवित्रता,
इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान अर्जन, सत्य, अक्रोध बुद्धिमत्ता ।
धारण कर इन गुणों को, मनुष्य त्रिगुणातीत होता,
सही और गलत का फैसला करने में सक्षम होता ।

याज्ञवल्क्य जी ने गिनाएं हैं धर्म के कुल नौ लक्षण,
मुख्यरूप से वही सब जिसका मनुस्मृति में वर्णन ।
अहिंसा, सत्य, अस्तेय संग स्वच्छता अंदर-बाहरकी ।
इन्द्रियों को वश में रखना, दान, संयम, दया, शांति ।

महात्मा विदुर ने धर्मको, कहा कल्याण करनेवाला,
बताये इसके आठ अंग, महानता प्रदान करनेवाला ।
इज्या मतलब यज्ञ-पूजा, अध्ययन, दान और तप,
सत्य, दया, क्षमा, अलोभ, हैं धारण करने योग्य व्रत ।

अग्र चार अंगोंका आचरण, मात्र दिखावा हो सकता,
पश्च चार अंगोंका आचरण, नर को श्रेष्ठ बना सकता ।
महर्षि वाल्मीकि ने धर्म को क्षमा का पर्याय बताया,
उनहोंने इस सम्पूर्ण जगतको क्षमा से घिरा बताया ।

जैन परंपरा में भी धर्म के, दिए गए हैं पांच सिद्धांत,
अहिंसा का भाव ह्रदय में, नहीं करना किसी पे घात ।
सत्य, यानी झूठ न बोलना, अस्तेय से चोरी न करना,
संपत्ति का संचय न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना ।

और भी अनेकों धर्मग्रंथों में, या अनेकों ज्ञानियों द्वारा,
वो गुणों जिन्हें अपनाने से, मानव जीवन होता न्यारा ।
पर सही मायने में धर्म तो, केवल एक सत्य सनातन,
शेष सभी पंथ, मत, मजहब, सिर्फ उपासना के साधन ।

यह सदा बना रहनेवाला, जिसका नहीं आदि न अंत,
बताता जीवन जीने की पद्धति, कहते सब साधु, संत ।
मनुष्य योनिमें जन्में हो तो, धर्म केवल एक मानवता,
मानव-मानव एक जगतमें, यही सत्य सनातन कहता ।

अंग्रेजी में धर्म शब्द का, वास्तव में कोई नहीं पर्याय,
धर्मकी असीम गहराई को, कोई शब्द नहीं समझाय ।
बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की, बुद्धि भी कुंठित हो जाती,
धर्म क्या है? आम लोगों को, समझने में नहीं आती ।

भगवद गीता में मनुष्य को, गुण, कर्म के आधार पर,
चार वर्णों में बांटा गया है, जीवन जिए जिसे मानकर ।
हर वर्णोंको वहाँ दी गयी, पूर्ण करने को जिम्मेदारी,
निष्काम भाव से पूर्ण कर, बने सफल एक संसारी ।

जो कोई व्यक्ति, समाज, देश, जिस गुण से वो संपन्न,
बिना ऊँच-नीच साझा करे, जो उस गुणमें हैं विपन्न ।
एक विद्वान का होता धर्म, वो ज्ञान की ज्योत जलाये,
अज्ञान जिस भी परिवेश में, वो उसमें प्रकाश फैलाये ।

वैसे ही धनी व्यक्ति का धर्म, सेवा भाव हो दिल से,
उनतक वो सेवा पहुंचाए, जो जी रहे हों मुश्किल से ।
उन्हीं गुणों को करें धारण, जो समत्व ह्रदय में लाये,
वही हमारा बनकर धर्म, जीवन पथ को धवल बनाये ।

जिस किसी से पाकर सेवा, हुआ जो कोई भी उन्नत,
उसका भी धर्म, आभार करे, जिससे पाया वह जन्नत ।
नहीं धर्म कभी सिखलाता, दूसरों को कष्ट-दुःख देना,
बल्कि सुधरने का सभी को, अवसर प्रदान है करना ।

अधर्म दुर्जेय है हो सकता, पर अजेय नहीं हो सकता,
धर्म-मार्ग पर चलकर उसपर, विजय प्राप्तहो सकता ।

---------o--------

गुरु, शिक्षक और अध्यापक

गुरु :

धर्म-ग्रन्थों में दिया गया गुरु को उच्चतम स्थान,
कहते, न कल्पना कर सकते, बिना गुरु के ज्ञान ।
गुरु एक तत्व है, शक्ति है, नहीं व्यक्ति, नहीं तन,
गुरु एक भाव है, श्रद्धा है, गुरु है एक समर्पण ।

गुरु ज्ञान -रूपी अमृत के सबसे बड़े समन्दर,
समस्त जहाँ के ज्ञान समेटे रखते अपने अंदर ।
सदाचार का मार्ग सिखाते, देते अच्छे संस्कार,
विषम स्थिति में संयम और धैर्य का ज्ञान अपार ।

गुरु से सतत होती रहती, प्रवाहित ज्ञान की धारा,
वे ज्ञान के उदगम स्थान, निर्मल करते जग सारा ।
गुरु कोई भी हो सकता, नहीं कोई व्यक्ति विशेष,
प्रतीक चिन्ह भी हो सकते गुरु, दे जो ज्ञान संदेश ।

एक शिष्य के लिए होता, गुरु उसका उद्धारक,
संशय, अज्ञान मिटा अंतर से, बनता उसका तारक ।
सरल नहीं यह मानव तन, भरा इसमें अकूत गरल,
गुरु निज ज्ञान की ज्योति से, कर देते इसे निर्मल ।

शिक्षक :

जिनसे शिक्षा करते हम प्राप्त कहलाते हैं वे शिक्षक,
जीवन के सफर में वही शिक्षा, बनता हमारा रक्षक ।
जीवन में सदा उपयोग वाली बातें बतलाते हैं शिक्षक,
व्यावहारिक और रीती रिवाजों का देते ज्ञान हैं शिक्षक ।

माता -पिता को कहा गया इसलिए है पहला शिक्षक,
आर्थिक लाभ की कभी अपेक्षा रखते नहीं हैं शिक्षक ।
कैसे जियें हम इस जीवन को, बतलाते हमें हैं शिक्षक,
जीवन में क्या ज्ञान की कीमत ? भी बतलाते शिक्षक ।

अध्यापक :

और जो हमें अध्ययन कराते, कहते उन्हें अध्यापक,
उनकी शिक्षा जीवन में करती मार्गदर्शन व्यापक ।
वे पाठ्यक्रम से जुडी किताबी, देते विस्तृत ज्ञान,
कागजी प्रमाण-पात्र हम पाते, पाकर हम यह ज्ञान ।

अध्यापक अध्यापन हेतु रहते, जुड़े वे शिक्षण-संस्थान,
और अपनी सेवा के एवज में, वे पाते वेतनमान ।
शिक्षक की भूमिका में कभी, कुछ अध्यापक आ जाते,
यही गुण उनका अन्य अध्यापकों, से उन्हें अलग बनाते ।

समानता और भिन्नता :

सामान्य जीवन में शिक्षक, अध्यापक, लगभग एक समान,
उनकी शिक्षा भौतिक जीवन में, करते दुर्गम पथ आसान ।
गुरु प्रदान करते सभी शिष्य को, उच्च कोटि का ज्ञान,
जिसे प्राप्त कर आम मनुष्य, बन जाता अलग इन्सान ।

शिक्षक या अध्यापक कभी, दे सकते नहीं यह ज्ञान,
इसीलिए तो इनके अपेक्षा, गुरु होते सर्वदा महान ।
अध्यापक, शिक्षक हमें, मिल सकते जन्म या धन से,
गुरु को पड़ता ढूढ़ना, निःस्वार्थ और शुद्ध मन से ।

एक शिक्षक या अध्यापक न देखता, कभी शिष्य की पात्रता,
पर, एक गुरु का शिष्य बनने हेतु, सिद्ध करनी होती पात्रता ।
शिक्षक या अध्यापक जब, देते वह किसी को शिक्षा,
स्वार्थ निहित रहता है उसमें, रहती सदा उन्हें अपेक्षा ।

गुरु सर्वदा होते मुक्त, मोह –माया के बन्धन से,
शिक्षक, अध्यापक न होते मुक्त, अपने कर्मबन्धन से ।
गुरु के सम्मान में हम मनाते, गुरु पूर्णिमा का उत्सव,
शिक्षकों के सम्मान में मनाते, हैं हम शिक्षक दिवश ।

राम नाम की महिमा

राम केवल एक नाम नहीं था, छोड़ी जिसने छाप,
कहते जिसके नामोच्चारण से, मिट जाते सब पाप ।
रामगुण जिसने अपनाया, हो गया पूर्ण निष्पाप,
युग बीते, प्रभाव न बीता, राम नाम का ताप ।

राम नाम की महिमा से, पत्थर पानी में तैरता,
राम नाम की ध्वनि मात्र, दुखों से हमें उबारता ।
राम नाम के उच्चारण से, मन हो जाता शान्त,
रामवाण सा राम नाम, होता जब मन अशान्त ।

राम से बड़ा कहा जाता है, श्री राम का नाम,
राम नाम जपने से वसता, रोम रोम में राम ।
राम नाम जपने से मिलता, पावन मुक्ति धाम,
भवसागर से पार हो जाये, ह्रदय वसे जब राम ।

राम नाम हीं आज सभी के, जीवन का है सत्य,
उद्भव जय श्रीराम से, और अन्त राम नाम सत्य ।
अपने आधे ह्रदय में, शिव-शंकर भी रखते राम,
अंत समय आने पर गाँधी, ने भी पुकारा"हे राम" ।

राम नाम की महिमा का, नहीं आदि, नहीं अन्त,
इनके महिमा की कथायें, भी हम सुनते अनन्त ।
जिसने भी इस महामन्त्र का, किया सदा उच्चारण,
इस मर्त्यलोक से मुक्ति पा, गया हो उसका तारण ।

राम नाम अमृत स्वरुप, खोलता मुक्ति का द्वार,
राग-द्वेष, ईर्ष्या-क्लेश, मिटता अंदर जो अपार ।
अन्तर्हृदय निर्मल होता, लेता जब राम का नाम,
राम नाम जपते रहने से, सब पाता पावन धाम ।

ढाई अक्षरों के मेल से, बना दिव्य यह नाम,
राम नाम को जोभी जपता, जाता रघुवर धाम ।
अन्तर्हृदय से जोभी करता, पावन नाम का जाप,
दुराचारिओं के भी अंततः, कट जाते सब पाप ।

राम नाम जपने से जिसके, मन में उठे अनुराग,
उसी क्षण से, उसके ह्रदय से, मिटते क्लेश विषाद ।
अन्तरात्मा निर्मल होता, शरणागत होते "श्री राम",
भव-वन्धन को काट जगत से , देते मुक्ति धाम ।

रामोच्चारण जीवन में, अद्‌भुत एक दिव्य रसायन,
सभी विकारों को कर दूर, खोलता समस्त वातायन ।
सात्विक प्रवृतियों को केवल, अन्दर प्रशिष्ट कराता,
मुक्ति प्राप्ति के साधन का, मार्ग प्रशस्त कर जाता ।

राम नाम के रस सुधा का, करता जो रसपान,
अन्तर निर्मल स्वच्छ होजाता, वारि शुद्ध सामान ।
राम नाम के उच्चारण से, वदन में होता कम्पन,
उस स्पंदन से, प्रभु मिलन की, आशा होती संपन्न ।

राम नाम जपने से उद्भव, होते शुद्ध विचार,
राम नाम के जपन मात्र से, होते वेड़ा पार ।
राम नाम जपने से ही, होगा जीवन उद्धार,
राम नाम का जपना ही, खोलेगा मुक्ति द्वार ।

आयें हम सब मिल करें, राम नाम गुणगान,
राम नाम के गुंजन से, जग का होगा कल्याण ।
सम्पूर्ण जगत जब राम नाम से, होगा कम्पायमान,
विकाररहित होगें सब प्राणी, होगा शुभ उदीयमान ।

जीवन-रूपी नौका के हैं, राम नाम पतवार,
अनन्य भाव से राम नाम, जपता जो बारम्बार ।
प्रभु-राम की कृपा उसपर, होती असीम अपार,
जीवन-मृत्यु रूपी संसार, सागर से करते पार ।

राम नाम उत्पन्न करता, हिय में समत्व का भाव,
मनुष्य जाति, स्थान विशेष का, होता नहीं प्रभाव ।
मानव-मानव सब एक है, का होता भाव स्पंदित,
रसायन रूपी राम नाम पा, होता जग आनन्दित ।

राम नाम की महिमा से, सब कार्य सरल हो जाता,
अति विशाल गहरे सिंधु पर, सेतु निर्बाध बंध जाता ।
कंटकाकीर्ण दुर्गम पथ भी, पथ अति सुगम बन जाता,
राम नाम की महिमा, डूबती नैया पार लगाता ।

राम नाम के जपन मात्र से, उलझन, संशय मिटते,
द्विविधा मिटते, आत्मविश्वास के, भाव ह्रदय में जगते ।
सकारात्मक आत्मविश्वास, आध्यात्मिक भाव जगाता,
जो परमतत्व केपाने तक का, मार्ग प्रशस्त कर जाता ।

अशुद्ध भाव रख मन में कोई, रामोच्चारण जब करता,
संपन्न सकाम कर्म का फल, उसे कालनेमि सा मिलता ।
संकट में शुद्ध मन से जब कोई, राम नाम है जपता,
संपन्न निष्काम कर्म का फल, उसे जटायु सा मिलता ।

राम नाम का जाप सदा, करते थे भक्त हनुमान,
पावन निर्मल ह्रदय में उनके , वसते थे "श्रीराम" ।
लंकेश विभीषण पूछे जब उनसे, कहाँ हैं तुममे राम,
छाती चीर तब दिखा दी उनने, लक्ष्मण –सीता -राम ।

रत्नाकर डाकू को नारद, कहे जब जपने को राम,
राम नहीं, पर मरा - मरा, कहते लगाया वह ध्यान ।
ह्रदय परिवर्तित हुआ और, बन गए वे ब्रह्म समान,
आदि कवि वाल्मिकी हुए, लिखी वाल्मिकी रामायण ।

आयें हम सब भी ह्रदय में , करें धारण श्री राम,
राम नाम का उच्चारण कर, लगायें उनमें ध्यान ।
राम नाम की महिमा से , निश्चित होगा कल्याण,
निष्काम जीवन लक्ष्य होगा, मिलेगा मुक्ति धाम ।

---------o--------

सफर

जिंदगी का सफर,
सदैव अविस्मरणीय ।
सत्कर्म युक्त अगर,
तो अनुकरणीय ।

ब्रह्मरचित सृष्टि,
जो वृहत भीमकाय ।
सभी योनियों का,
प्राकृतिक सराय ।

अकेले ही आये हैं,
अकेले ही जायेंगे ।
घना सगा, फिर भी,
नहीं साथ निभाएंगे ।

आये यहाँ तो किये स्नान,
और स्नान कर करेगें प्रस्थान ।
कटु नियम प्रकृति का,
नहीं तेरा यहाँ, स्थायी स्थान ।

आने से पहले भी,
अज्ञात थे हम,
जाने के बाद भी,
होंगे अज्ञात ही हम ।

धरा रूपी जगत में,
मध्यान ही रंगमंच है,
यहीं जीवन का उद्गम,
यहीं जीवन का अंत है ।

आरम्भ से अंत तक,
इस मध्यान के पल ।
कट जाती है जिंदगी,
सहज रहते, न कोई पल ।

जीवन के पथ, नहीं होते सरल,
पग-पग पर पीना होता गरल ।
बनाते जो योजना, होते असफल,
चाहते करना ठोस, पर होता तरल ।

जो सोंचते हम,
कभी शायद ही होते ।
जिसे नहीं चाहते,
सामने अक्सर होते ।

कभी पथ समतल,
कभी कंटकाकीर्ण ।
पाँव पड़ते ही,
हो जाते विदीर्ण ।

आलोकित पथ न रहते सदा,
सघन तम लेकर आती विपदा ।
जीवनपथ फूलोंकी सेज न होती,
काटों की ताज बन रहती सदा ।

कभी हिमालय की ठंड,
तो कभी थार की गरमी ।
सफर अनवरत चल,
पर होती पूरी करनी ।

सफर में बनाते, कई हम मुकाम,
करने को पूरा, करते सतत काम ।
न वर्षा, न आंधी, न कष्टकी चिंता,
एक जूनून बस, मंजिल मिले तमाम ।

प्रकृति जिसमें रहते,
वो त्रिगुण संपन्न ।
त्रिगुणों की माया से,
नहीं बच पाते हम ।

जिसमें सत्व भारी, देवत्व होता उसमें,
जिसमें रज भारी, बसता स्वार्थ उसमें ।
तमस जिस पर डाला, अपना प्रभाव,
अज्ञानता का, अंधकार होता उसमें ।

मंजिल पाने के क्रम में,
जाती जीवन उलझ ।
निकल पाना उससे,
नहीं रहता सहज ।

तय मंजिल से हम रहते आसक्त,
कर्म उसके लिए करते रहते सतत ।
रहता यही मानवीय फितरत,
फल का मिलना, तो जानता कुदरत ।

स्वार्थ का रहता सदा बोलबाला,
अनासक्ति का दूर, रहता उजाला ।
कभीतो समझें, हम जीवन का मर्म,
मानव योनि मिला, करने को कर्म ।

यही एक योनि, होती कर्म योनि,
शेष तो होते केवल भोग योनि ।
कर्म अगर होंगे हमारे निष्काम,
अनासक्ति अपना, तजेगें सकाम ।

सुख-दुःख में रह पाएंगे सम हम,
जीवन न होगी कभी ये विषम ।
रहेगी सरल ये, गरल होगी कम,
मोक्ष प्राप्ति का, पथ होगा सुगम ।

काम, क्रोध, मद, मोह,
और लोभ से दूर ।
सुख-दुःख, लाभ-हानि,
को न मजबूर ।

स्वार्थ को तज, रखें,
परमार्थ का भाव ।
निश्चय ही जीवन में,
न होगा अभाव ।

सफर जिंदगी का,
तब होगी निश्छल ।
अनवरत रहेगी चलती,
सरिता सम कलकल ।

---------o--------

राजा राम, रामराज्य और श्रीराम

धरा पर अक्सर असुरों का बढ़ता आतंक अपार,
और त्रेतायुग में भी सुरक्षित नहीं रहा यह संसार ।
डर-भय के आतंक में रहने लगा सकल समाज,
तभी धरा पर भव भय हारी, श्रीराम का आगाज ।

एक राजा के रूपमें किये, वे उच्च आदर्श स्थापित,
सबका विकासहो सम, हेतु किये रामराज्य स्थापित ।
अधर्म को मिटा धरा से उसपर, धर्म ध्वज फहराया,
अमन जो दिखती दूर कहीं, धरा पर उसे फैलाया ।

आदर्श की पराकाष्ठा रच, जगमें कहलाये पुरुषोत्तम,
उत्कृष्ट त्याग की भावना से यहाँ, कहे गए सर्वोत्तम ।
संयमित, मर्यादित और संस्कारित था उनका जीवन,
कठिन संघर्षों से भरा पड़ा, राम का सम्पूर्ण जीवन ।

लक्ष्मण रेखा के समान थी, श्रीराम की निज मर्यादा,
दुःख असीम भोगा पर तोड़ उसको कभी न लांघा ।
देश और जनता के हित को परम लक्ष्य था माना,
स्वार्थ से ऊपर उठ उसको, लक्ष्मण रेखा ही जाना ।

वचन की मर्यादा को रखना, जोथी रघुकुल की रीत,
राम भी उससे अलग हुए ना, अटूट थी उनकी प्रीत ।
माता, पिता, भ्राता सखा, या अर्धांगिनी या जनमानस,
एक समान वचनों का पालन का था अद्‌भुत साहस ।

सम्पूर्ण भारत को जोड़ने वाले पहले व्यक्ति थे राम,
उत्तर से चल दक्षिण आ दिया, था लक्ष्य को अंजाम ।
जाति-वर्गसे ऊपर उठकर, वे करते थे अपना काम,
नर-बानर, मानव या दानव, सबके संग सम थे राम ।

सम्मान जनक भावना रहती, स्त्रियों के प्रति उनकी,
बहुपत्नी प्रथा रघुकुलमें, पर एक पत्नीव्रत पालन की ।
अपने पुण्य प्रताप से किया था अहिल्या का उद्धार,
समरसता की भावना से वे, पहुँचे थे शबरी के द्वार ।

अजीब व्यक्तित्व के स्वामी राम, होते सब नतमस्तक,
वनवास सहर्ष स्वीकारने पर, कैकेयी से दशरथ तक ।
पता चलते ही दौड़े, नंगे पाँव, भरत थे चित्रकूट तक,
लौटने को नहीं माने तो, पादुका उनका निज मस्तक।

निषादराज गुह्य भी था, राम के व्यक्तित्व से प्रभावित,
मानी न राम की नदी पार, करने की बात प्रस्तावित ।
चरण धोये, फिर तरणि विठाये, फिर की सरिता पार,
मेरा भी जीवन पार लगाना, आऊँ जब मैं तेरे द्वार ।

उनके व्यक्तित्व में आकर्षण था बरबस खींचही लेता,
जामवंत हो या सुग्रीव हो, या शूरवीर बाली का बेटा ।
असुर समुदाय भी राम के, व्यक्तित्व से था प्रभावित,
विभीषण आये राम शरण, रावण जबकिया निष्काषित ।

साधारण एक मानव की भांति था श्रीराम का जीवन,
कहते थे उन्हें भगवान पर दिव्यता का नहीं प्रदर्शन ।
एक आम आदमी के संघर्षों सा भरा हुआ था जीवन,
जबभी जैसी बाधा आयी तब, स्वयं ही किया निवारण ।

छल से सीता का रावण ने किया था जब अपहरण,
दिव्य शक्ति का देखे गए नहीं करते हुए अनुकरण ।
अपने सामर्थ्य और सूझबूझसे किया सीताका तलाश,
हर उससे जोसूत्र बन सके, मिलने का किया प्रयास ।

लोगोंको अपने साथ लानेकी, राम की अद्‌भुत क्षमता,
बिखरों को करना संगठित, उनकी अपनी विलक्षणता ।
सुग्रीवसे कर मित्रता उन्होंने, मित्रता का धर्म निभाया,
मिलकर उनके साथ बड़ी एक अविजित सैन्य बनाया ।

अति संयमित और सामर्थ्यवान, थे त्रेता युगके श्रीराम,
लेशमात्र अभिमान न उनमे, पर जागृत था स्वाभिमान ।
सिंधु पर राह बनानेको जब, वरुणदेवका किया ध्यान,
अनदेखी करने पर राम का, जागृत हुआ स्वाभिमान ।

स्वाभिमान पर आघात का था, घातक काफी परिणाम,
मांगे करवद्ध हो क्षमादान, और पथ भी किया प्रदान ।
श्रीराम सिंधु पर सेतु बना, बढे लेकर विजयी अभियान,
रावण मरण, विभीषण तरण, फिर अयोध्या को प्रस्थान ।

अच्छे भ्राता, बंधु, सखा संग, एक कुशल प्रशासकथे राम,
जनता के कल्याण को सर्वोपरि, रखते थे हमेशा श्रीराम ।
अपनी प्रजाके लिए नीतिकुशल, न्यायप्रिय राजा थे राम,
कोई दुखी नहीं उनके राज्य में, ऐसे तारणहार थे राम ।

अपने दम पर जो राज्य गठन की रामराज्य कहलाया,
आसीन होते ही सिंहासन पर, था लहर हर्ष का आया ।
रोग-व्याधि से ग्रस्त न कोई, सकल भय-शोक से दूर,
जगह नहीं त्रिविध तापों का, चले गए सब राज्य से दूर ।

प्रकृति भी सहृदय हुयी थी, वहां रामराज्य के आने से,
हरी भरी रहती धरती सदा, बारिश समय पर होने से ।
राजा सजग तो प्रजाभी हुयी, निज कर्मोंके प्रति सजग,
निष्काम कर्म की भावना सबमें, अंतरदिल गयी उपज ।

ऊंच-नीच या अमीर-गरीब का, भेदभाव नहीं थोड़ा भी,
सही मायनों में लोकतंत्र और साथ सभी को जोड़ा भी ।
राजा और प्रजा के बीच में, दुरी नहीं कभी कोई रहती,
देश-प्रेम, दाम्पत्य प्रेमसे, यहाँ सदाही यहाँ ऊपर रहती ।

राजतन्त्र में लोकतन्त्र का, एक अनोखा अद्भुत संगम,
ज्ञान-भक्तिकी अविरल धारा, जहाँ बहती रहती हरदम ।
जनता की खुशियों में ही राजा, थे तलाशते निज सुख,
हर संभव प्रयास भी राजाका, जनता रहे हो भयमुक्त ।

आजादी के वक्त गाँधीकी थी, सोंच भारत में रामराज्य,
रामराज्य का मतलब था, स्वराज, धर्मराज या लोकराज ।
जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा हो शासन,
अनासक्त निष्काम हो राजा, रखता हो दृढ अनुशासन ।

अबतक हम जिनकी बात किये हैं, वो थे राजा श्रीराम,
जिन्होनें नैसर्गिक बना दिया था, सम्पूर्ण अयोध्या ग्राम ।
इनके सुकृत्यों के कारण ही, अयोध्या बनी पावन धाम,
स्वार्थरहित सेवा करने को, दिया मानवता को पैगाम ।

राजा राम द्वारा स्थापित व्यवस्था, रामराज्य को जाना,
उस व्यवस्था में अन्तर्निहित, मूल्यों को भी पहचाना ।
कैसे उनका स्वयं कभी, शासन पर नहीं हुआ हावी,
जोकदम उठाये उन्होंने कैसे, थे अद्‌भुत और प्रभावी ।

अब हम जिनकी बात करेगें, वो होगी सिर्फ राम की,
सूर्यवंश में दशरथनंदन, बनकर जन्म लिए श्रीराम की ।
बहुप्रतीक्षित पुत्र प्राप्ति से, दशरथ घर खुशी अपार थी,
चिर प्रतीक्षित अभिलाषा, रघुकुल की हुयी साकार थी ।

राम का बचपन सभी अनुज संग बिता राजमहल में,
शिक्षा प्राप्तिको भेजे गए थे, जंगल स्थित गुरुकुल में ।
महज बारह वर्षकी आयु में, छोड़ा था राजमहल को,
शिक्षा पूर्णकर अनुजों के संग, लौटे अयोध्या घर को ।

केवल कुछ दिन ही बिता पाए वे राजमहल में जीवन,
विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को, लेने का आया निमंत्रण ।
अंतर में विरोध के बाबजूद, दशरथ नहीं किये विरोध,
गुरी वशिष्ठ के मध्य आने से, नहीं आया कोई अवरोध ।

विश्वामित्र संग राम और लक्ष्मण, चले पुनः जंगल को,
असुरों से त्रस्त ऋषि, मुनियों का, करने को मंगल को ।
तब महज अवस्था सोलह वर्षकी, राजवस्त्र पुनः त्यागा,
राजकुलमें लेकर जन्म भी, कोई रहता जैसे परित्यागा ।

मुनि आश्रम में मुनि बालक सा जीवन सरल बिताया,
प्राकृतिक झरनों का पानी और कंद-मूल फल खाया ।
मुनि संग शस्त्र अभ्यास सघन में रहाथा बीतता दिन,
असुरों से मुनि की रक्षा में, रहते दोनों रात्रि में लीन ।

मारीच, सुबाहु ताड़का मार, मुनिजन को किये भयमुक्त,
और तरुणावस्थाको पीछे छोड़, हुए युवावस्था से युक्त ।
जनकपुर में शिव-धनुष तोड़ वे, किये सिय संग विवाह,
चारो भ्राता पत्नी को संगले, चल पड़े अयोध्या की राह ।

कुछ ही दिन बीते अयोध्या में, चली राजतिलक की बात,
माता कैकेयी की टेढ़ी चाल ने, किया उसपर तुषारापात ।
चौदह वर्षका वनवास रामको, और मिले भरत को ताज,
बिना विरोध वनगमन किये वे, ले सीता, लक्ष्मण को साथ ।

राजमहल में राजपुत्रों सा, सुख नहीं मिला दिन चार,
काटों से भरे पथ पर चलने का दिखने लगा आसार ।
रघुकुल की रीत निभाई राम ने, बातों की रख मान,
मर्यादा बनाये रखने को, चाहे चली न जाये क्यों प्राण ।

राजवस्त्र को पुनः त्यागकर, मुनि का भेष किया धारण,
पलभर कोभी सोंचा नहीं, हुआ कैसे, क्यों, किस कारण ।
निकल पड़े कठिन-दुर्गम पथपर, होकर निडर निर्भीक,
और उसे बनाने लगे सुगम खिंच, फिर नयी एक लीक ।

पथ भरा पड़ा बाधा-विघ्नों से, अति दुर्गम, क्लिष्ट, कठिन,
दोनों भाई तो आदि इसके, पर जानकी थी अनुभवहीन ।
तरुवर की छाया, या कंदरों में, होता कहीं लघु निवास,
और सरिता या झरने के जलमें पाते थे पियूष मिठास ।

जंगल जंगल चलते रहते, बदलते रहते निवास स्थान,
देखते जहाँ पर शाम हुयी, देते छप्पर वहीँ पर तान ।
बारिश घनघोर, घना तम हो या प्रखर सूर्यकी किरणें,
संभल संभल बढ़ते रहे और दिया न खुद को गिरने ।

कहते विपत्तियां आती सदा, लेकर निज सगों को साथ,
रावण आकर, सीता हरण कर, लेगया उन्हें अपने साथ ।
जंगल के वातावरण में देख, अपनी पत्नी का अपहरण,
दुःख से बड़े ही विह्वल हुए, थे अश्रुपूरित राजीव नयन ।

यहाँ वहाँ विक्षिप्त सा कुछ, ढूंढ रहे वन में कोई सूत्र,
पशु, पक्षी, तरुवर सबसे पूछे, समझे जिन्हें अपना मित्र ।
जंगल भी दशा दयनीय देखकर, रजकुमार का रोया,
कहाँ हो सीते, कहाँ हो सीते, सुन सुन अधीर वो होया ।

कोई तो बता दे, कहाँ है सीता, सबको पूछ रहे राम,
महज एक सूत्र पाने को, वन-वन भटक रहे थे राम ।
दोनों राजकुमारों की दशा देखकर, हतप्रभ धरा गगन,
दिनकर भी निस्तेज होगए, और बहना रुकगया पवन ।

आखों आगे तम घना सिर्फ, दिख रहा न कोई पथ था,
तब देवदूत बनकर जटायु आ, दिया रश्मि दिनकर सा ।
दिशा दक्खिनकी ओर राम, तेरी भार्याको लेगया रावण,
तत्पश्चात ही दण्डित करने को, संगठित होने लगे पावन ।

सूझ-बुझ और साहस से किया, सटीक नीतिका निर्धारण,
सुग्रीव साथ एक संगठित अजेय, सेना का किया स्थापन ।
फिर सेतु, सागर पर बांध चले, करने को दण्डित रावण,
निज सगों समेत सब बंधु खोया, हुआ धरा अति पावन ।

रावण से मुक्त सीता को भी, देनी पड़ी थी अग्नि परीक्षा,
लोक निंदा से बचने को ली, जाकर विपरीत निज इच्छा ।
लौटे अयोध्या फिर बन गए राम थे, अवध पूरी के राजा,
प्रजा समस्त हर्षित हुयी, और बज उठे ढोल और बाजा ।

खुशी श्रीराम की टिक नहीं पायी, बीते दिवस ज्यों चार,
साथ सीता को रखने पर लोगों ने उनपर किया प्रहार ।
अन्दर तक हिले थे राजा राम, जान लोगोंमें निज स्थान,
फिर विचार सीता को कर दिया, विकट अरण्य प्रस्थान ।

और राजा की सुख सुविधाओं से खुद को किया अलग,
सोते स्वयं कुश चटाई पर, पर जनसमूह के लिए सजग ।
होते एकांत ही, सहधर्मिणी विरह में, नयनों से बहाते नीर,
लगता राजाराम ने राम को, बना रख दिया एक फकीर ।

माता जानकी गर्भवती थी, उन्हें जब भेजा गया था जंगल,
थे मर्यादित राजा राम भी चिंतित, सोंचकर उनकी मंगल ।
राजाराम ने, आवाम के हित में, राम का दिया बलिदान,
निःस्वार्थ जनता की सेवा का, रचा अद्‌भुत उत्कृष्ट प्रमाण ।

श्रीराम जिये जीवन अपना, केवल बनकर राजा राम,
गर्भवती सीता का क्या हुआ, रहा नहीं उनका ध्यान ।
उनका संपूर्ण जीवन रहा, जनता के हित में समर्पित,
अनासक्त, निष्काम भाव, उच्चादर्शको किया प्रदर्शित ।

जब राजाराम को सीता से मिलने का आया था वक्त,
स्वीकारोक्ति निज की प्रदान, जानकर जनता का मत ।
सीता ऊब चुकी थी सुन सुन राजधर्म के नियमों को,
धरा समायी, रामको कहकर, अगले जन्ममें मिलने को ।

श्रीराम पलपल जलते रहे, अंतर के अग्नि की ज्वाला में,
और राजा राम फलते रहे, अवध के विकास उजाला में ।
राजा राम रहे जीवन भर तक, श्रीराम के ऊपर हावी,
अपने दायित्वको सदैव ही पूर्ण कर, हुए जगत प्रभावी ।

एक अच्छे राजाका जीवन त्याग का, होता सदैव प्रतिमूर्ति,
जनता का हित सबके ऊपर, नहीं की अपनी यश कीर्ति ।
अंतर निःस्वार्थ, निष्काम भाव, सभी इन्द्रिय दोषों से मुक्त,
और राजा राम तो पुरुषोत्तम थे, सभी सद्‌गुणों से युक्त ।

उन्होंने राजा राम के रूपमें, किये उच्च आदर्श स्थापित,
अपने हित से सदा बढ़कर माने, अपनी प्रजा का हित ।
भेद-भाव, अन्याय, असत्य को, खुद से रखे सदा ही दूर,
आचरण, व्यवहार, नैतिकता, करुणा व क्षमा दया भरपूर ।

परोपकार रूपी मन्दाकिनी सदा, उनके ह्रदय में बहती,
जो अवधपुरी के प्रजा जनों पर, हरदम रहती सरसती ।

उनका गांभीर्य सिन्धु समान और धैर्यथा उच्च हिमालय,
मर्यादा, आदर्श, विनय, विवेक संग सद्गुणों का आलय ।

---------o--------

भगवान की विभूतियाँ

(श्रीमद भगवत गीता अध्याय -10 पर आधारित)

समर भूमि में जब भगवान, पार्थ को दे रहे थे ज्ञान ।
जीवन-मृत्यु का रहस्य बताया, सांख्य और कर्मयोग बताया ।
क्षात्रधर्म का मर्म समझाया, निष्काम, समत्व का भाव बताया ।
स्थितप्रज्ञ होता है कौन, परमधाम पाता है कौन ?

सृष्टि का कैसे हुआ निर्माण, कैसे जड़ और चेतन प्राण ।
बताया गीता ज्ञान पुरातन, है यह शाश्वत और सनातन ।
प्रश्न सतत करते थे पार्थ, उत्तर देते श्रीकृष्ण यथार्थ ।
संशय से उठते थे जो प्रश्न, हल निकालते थे श्रीकृष्ण ।

बोले भगवान, सुनो अर्जुन, मेरा ही रूप सगुण-निर्गुण ।
कथा मेरे प्रकट होने की, भू पर अवतरित होने की ।
जानते न देवता, न ही महर्षि, मैं हीं उन सभी का आदि ।
जानते मुझे जो अनादि, अजन्मा, सम्पूर्ण लोकों का परमात्मा ।

वह नर निश्चित ही ज्ञानवान, होता वह पापमुक्त इन्सान ।
प्राणियों में उत्पन्न जो भाव, मेरा ही है वह सब प्रभाव ।
सप्तर्षि, मनु और सनकादि, निश्चित ही मैं उनका आदि ।
जो पुरुष मेरी योगशक्ति को, परम ऐश्वर्यरूप बिभूति को ।

तत्व से सम्पूर्णतः जानता, वो निश्चल भक्ति से जुटता ।
मैं ही संसार का कारण मूल, उद्भव, स्थिति, संहार समूल ।
नित्य-निरंतर जो मुझे भजता, बुद्धियोग उसे पूर्णतः देता ।
अज्ञानजन्य उसके अंधकारको, ज्ञानदीप नष्ट करता उसको ।

अर्जुन बोले, हे ब्रह्म परम, पावन अतीव अरु धाम परम ।
सभी देवों के उदगम आप, अजन्मा, दिव्य, सनातन आप ।
नारद, असित, देवल, व्यास, कहते यही सब बात खाश ।
और अब आप स्वयं मुझसे, कह रहे यही सब बात मुझसे ।

हे केशव, कहे जो मुझसे आप, मानता सत्य उसको निष्पाप ।
इसलिए यह मेरी याचना, करवद्ध है आपसे प्रार्थना ।
अपनी दिव्यता का पूर्ण अर्थ, आप हीं कहने में हैं समर्थ ।
हे योगेश्वर, मैं किस प्रकार, चिंतन कर जानूँ हर प्रकार ।

किन भावों में करूँ चिन्तन, जान पाऊँ आपको, हे भगवन ।
आप अपने योग-सामर्थ्य को, परम ऐश्वर्य रूप बिभूति को ।
कहिये इन्हें आप विस्तार से, करें तृप्त मुझे उसके सार से ।
अर्जुन की प्रार्थना की स्वीकार, भगवन बोले, हे कुरु कुमार ।

मेरी विभूतियाँ अगम अनन्त, इसके प्रसार का नहीं अन्त ।
हरि अनंत, हरि कथा अनंत, सुनत, कहत बहु विधि ते सन्त ।
इसलिए तुझे, हे कुरु श्रेष्ठ, कहुंगाँ सार उसमें जो श्रेष्ठ ।
सभी जीवों के ह्रदय स्थित, आत्मा-रूप में मैं अवस्थित ।

हे गुडाकेश, सभी भूतों का, आदि, मध्य और अंत उनका ।
अदिति पुत्रों में मैं विष्णु, ज्योतियों में किरणों वाला भानु ।
मैं तेज हूँ सभी मरुतों का, अधिपति चन्द्र, नक्षत्रों का ।
वेदों में मैं हूँ सामवेद, देवों में मैं हूँ इन्द्रदेव ।

मन हूँ मैं सभी इन्द्रियों में, चेतना हूँ सभी प्राणियों में ।
एकादश रुद्रों में मैं महेश, यक्षों-राक्षसों में मैं धनेश ।
अग्नि मैं आठो वसुओं में, सुमेरु मैं सभी पर्वतों में ।
वृहस्पति, मुख्य पुरोहितों में, स्कन्द हूँ सेनापतियों में ।

सागर हूँ सभी जलाशयों में, भृगु में सभी महर्षियों में ।
एक अक्षर मैं हूँ 'ओंकार', जपयज्ञ हूँ यज्ञों में प्रकार ।
हिमालय हूँ मैं अचलों में, अश्वथ हूँ सभी वृक्षों में ।
नारद हूँ मैं देवर्षियों में, चित्ररथ हूँ मैं गन्धर्वों में ।

सिद्धों में मैं मुनि कपिल हूँ, अश्वों में मैं उच्चैःश्रवा हूँ ।
हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत हूँ, मानवों में मैं महिपाल हूँ ।
वज्र हूँ मैं सभी आयुधों में, कामधेनु हूँ मैं गौओं में ।
प्रजा उत्पत्ति का हेतु काम, सर्पराज मैं वासुकि नाम ।

शेषनाग सभी नागों में मैं, वरुणदेव जलचरों में मैं ।
अर्यमा हूँ मैं पितरों में, यमराज मैं शासकों में ।
असुरों में भक्त प्रह्लाद मैं, ज्योतिषियों में हूँ काल मैं ।
पशुओं में मैं सिंह बलवान, पक्षियों में मैं गरुड़ महान ।

पावनकर्ता मैं पवमान, शस्त्रधारियों में मैं राम ।
मगर हूँ मैं मछलियों में, भागीरथी हूँ मैं नदियों में ।
हे अर्जुन, जो सृष्टि अनंत, उसका मैं आदि मध्य, अंत ।
विद्याओं में मैं ब्रह्मविद्या हूँ, वाद करनेवालों का वाद हूँ ।

अक्षरों में मैं अकार हूँ, समासों में द्वंद्व समास हूँ ।
काल का भी मैं महाकाल, धाता सर्वतोमुख विशाल ।
क्षय करनेवाली मृत्यु हूँ मैं, भविष्य का उत्पत्ति हेतु मैं ।
स्त्री जाति में, श्री, वाणी कृति, स्मृति, मेधा, क्षमा और धृति ।

छंदों में हूँ मैं गायत्री छंद, ऋतुओं में ऋतुराज वसंत ।
वैदिक स्तोत्रों में बृहत्साम, महीनों में मार्गशीर्ष महान ।
दयूत हूँ मैं छलियों का, तेज हूँ मैं तेजस्वियों का ।
जीतने वालों का विजय हूँ, निश्चयी लोगों का निश्चय हूँ ।

सत्वशीलों का मैं सत्व हूँ, वृष्णिवंशियों में वासुदेव हूँ ।
अर्जुन हूँ मैं पाण्डवों में, वेदव्यास हूँ मैं मुनियों में ।
कवियों में शुक्राचार्य हूँ मैं, शासकों का दण्ड हूँ मैं ।
विजयेच्छावालों की नीति मैं, गोपनीय भावों में मौन मैं ।

मैं ही ज्ञानिओं का ज्ञान हूँ, प्राणियों का मूल कारण हूँ ।
चर अचर नहीं कोई जगत, रहता जो मुझसे दूर पृथक ।
मेरी विभूतियों का नहीं अंत, हे अर्जुन, यह असीम अनंत ।
विभूतियों का जो है विस्तार, कहा केवल, तुझको मैं सार ।

जो-जो भी वस्तु ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और शक्तियुक्त ।
उस-उसको मेरा तेज जान, तेज के अंश से उत्पन्न जान ।
हे अर्जुन, तुम्हें इस प्रकार, मेरी विभूतियों का विस्तार ।
जिसका न कोई आर -पार, तुम करोगे क्या जानकर ?

दृष्टिगत है जो जगत सम्पूर्ण, मेरे अंशमात्र से है परिपूर्ण ।
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में हो व्याप्त, धारण करता हूँ इसे पार्थ ।
लेना चाहिए तुझे इतना जान, सभी वस्तुओं में मैं विद्धमान ।
दिख रहा तुझे वो सब मैं हूँ, जो नहीं दिखता, वो भी मैं हूँ ।

बस इतना तुम जानों अर्जुन, मैं हीं हूँ द्वय सगुन निर्गुण ।
योगशक्ति के अंशमात्र से, रखता जगत धारण करके ।
करते सतत जो मेरा ध्यान, उसको देता हूँ मैं तत्वज्ञान ।
प्राप्त जिसको मानव करके, रहने लगता मुझमें बस के ।

---------o--------

रावण और आज

देखो राम, जिस रावण को तुम, त्रेता युग में मारा,
अधर्म पर धर्म की विजय, सबने कह जिसे पुकारा ।
लगता मरा नहीं, सुषुप्त था, धरा पर पुनः पधारा,
पुनर्जन्म ले, देखो कैसे, आकर आज पैर पसारा ।

द्वापर में रच महाभारत, संहार महा करवाया,
भाई और भाई में ही, असि से असि बजवाया ।
त्रेता युग में रावण एक था, द्वापर युग में हुए अनेक,
कलयुग की बात अलग, कम-से-कम हर घर एक ।

युग बदलने के साथ - साथ, रावण की गिनती बढती,
कलयुग आते आते धरा पर, रावण ही रावण दिखती ।
त्रेता का रावण वेदविज्ञ था, महाज्ञानी, शिवभक्त,
तप के बल पर देवों को भी, किया था उसने पस्त ।

जब शक्ति का मद, मगज में उसके, अहंकार बन छाया,
पतन की राह पकड़ा पहले, फिर धरा के गर्भ समाया ।
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, से जब तक था वह दूर,
जनता के हित को परम लक्ष्य, माना जितेन्द्रिय वह शूर ।

जैसे ही इन पांचो के, प्रभाव में आया वह वीर,
अहंकार हावी होकर, बोलने लगा चढ़ सिर ।
शनैः शनैः उसके ज्ञान पर, पड़ने लग गया धूल,
निज गलती को ज्ञान दर्पण, में पढ़ना गया वह भूल ।

"एको अहम् दूजो नास्ति", बन गया उसका मंत्र,
मैं और सिर्फ केवल मैं हीं, दुनिया में सर्वत्र ।
समय साथ रावण का दर्प भी चढ़ने लगा शिखर पर,
सूर्पनखा के बहकावे आ, सीता को ले आया हरकर ।

मानों मौत को बुला लिया, खुद ही निमंत्रण देकर,
शिव तांडव स्तोत्र रचयिता, बुद्धिहिन हुआ खोकर ।
खुद समेत सब प्रियजन खोया, भीषण हुई लड़ाई में,
फल घमण्ड का वह भोगा, जीवन को बिता बुराई में ।

त्रेता के ज्ञानी रावण को, दर्प ने क्या हाल किया,
द्वापर के अज्ञानी रावण को, जीवन जीना बेहाल किया ।
दर्प होने पर भी त्रेता के, रावण में बुद्धि कुछ शेष था,
न हानि पहुंचाया सीता को, दे रहा सुविधायें विशेष था ।

प्रतीक्षा, प्रयत्न करता रहा, सीता कैसे स्वीकार करे,
उनकी स्वीकृति के बाद ही, रावण उन्हें अंगीकार करे ।
मृत्यु वरण तक रावण ने, सीता को पूर्ण सम्मान दिया,
जबतक रही वह लंकामें, उसने न कभी अपमान किया ।

पथभ्रष्ट शिवभक्त रावण कभी, नारी सम्मान नहीं छोड़ा,
निज सम्मान की रक्षा हेतु, समर से मुख नहीं मोड़ा
द्वापर के अज्ञानी रावण का, हाल बहुत ही अलग था,
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, प्रति, रहता बहुत सजग था ।

लोभ के होकर बशीभूत, न जाने क्या-क्या काम किया,
जग जानता द्यूत सभा में, द्रौपदि का कैसे अपमान किया ।
अपमान की सभी सीमाओं को, तोड़कर उसने पार किया,
भरी सभा में वस्त्र -हरण सा, घृणित कार्य साकार किया ।

महापुरुषों का विवेक न जागा, असि न बजी शूरवीरों की,
पर महाविनाश की कथा लिख गयी, उपस्थित बलवीरों की ।
रावण का दर्प, स्त्री का प्रतिशोध, एक महासमर ले आया,
अपने बंधु-बांधव संग रावण, उस महासमर में समाया ।

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, जब पंचमहाभूत में समाता,
अपना प्रभाव दिखा उसे, अधोगति तरफ ले जाता ।
कलयुग में रावण का हाल, कहने से भी डर लगता,
समाज, देश की दुर्दशा, देखकर भी व्यक्त न करता ।

आज का रावण, अहंकार संग, विचारों से भी पतित,
धर्म का आसरा लेकर करता, कार्य बहुत ही घृणित ।
सर्वविकारसम्पन्न है रावण, हरकतें करता बहुत ओछी,
सभी कुकर्म, दुष्कर्म का ज्ञानी, चालें होती बहुत सोंची।

युग बदलने के साथ साथ, रावण के गुण भी बदले,
सत, रज, तम तीनों गुणों के, मिश्रण भी उसमें बदले ।
त्रेता के रावण में सत, रज, तम, तीनों गुण था होता,
द्वापर के रावण में रज और तम गुण दिखा था होता ।

तम गुण का केवल प्रभाव, दिखता कलयुग के रावण में,
लूट-पाट हिंसा-बलात्कार, कर रहा धरा पुण्य पावन में ।
अराजकता, अशांति और, अत्याचार का माहौल सर्वत्र,
वीभत्स मानसिकता के आगे, लाचार हुआ है राजतन्त्र ।

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, के साथ जुड़ गये हैं सबलोग,
सब कुछ मेरा और केवल मैं, हीं करूँ इन सबका भोग ।
यही प्रवृति जो लोग रख रहे, रावण हैं बनते जा रहे,
भौतिक संसाधनों का केवल, करने को भोग वे जी रहे ।

सम्पूर्ण जगत में रावण आज, फैला लिया अपना वर्चस्व,
उनके आचरण से लगता, विध्वंश हो जाएगा सर्वस्व ।
अपने देश में भी रावण, जलाने की प्रवृति बढ़ रही,
मेरा भी अपना रावण हो, हर दल देश का कह रही ।

द्रुत गति से हर एक साल, रावण में बढ़ोत्तरी हो रही,
विकृत मानसिकता लोगों की, जो रावण के संग जोड़ रही ।
मेरा रावण, तेरे रावण से, बहुत बड़ा और ऊँचा है,
"ऐ सोंच क्या है" इसके बारे में, कोई भी व्यक्ति सोंचा है ।

रावण एक अहंकार का, प्रतीक जो माना जाता है,
मतलब मेरे अहंकार से, तेरा अहंकार छोटा है ।
अहंकार ही जग के नाश का, सबसे बड़ा है कारण,
उसका नाश सम्पूर्ण हुआ, जिसने किया इसका धारण ।

कहने का मतलब, जग समस्त, बढ़ रहा विनाश की ओर,
रावण उसका सूत्रधार , पकड़ा जो उसका डोर ।
त्रेता में रावण का वध, किया भगवान स्वयं बन राम,
द्वापर में बन पार्थ-सारथी, किया रावण का काम तमाम ।

हर जगह रावण ही रावण, कलयुग में क्या करेगें ?
क्या एक अकेले ही आकर, उन सबका अंत करेगें ?
या जहाँ -जहाँ पर रावण है, वहां आयेगें भगवान ?
कठिन परीक्षा उनके सामने, हल नहीं दिखे आसान ।

मेरे हिसाब से रावण वध, इन सबका हल नहीं है,
अंत करें उस मूल कारण का, ह्रदय जो बस गयी है ।
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ ही, बना रहा हमें रावण,
जबतक ए सब हटे न दिल से, धरा न होगी पावन ।

त्रेता के राम के गुणों का, करना होगा हमें धारण,
रावण एक प्रवृति है, मिलेगा, जिससे हमें निवारण ।
जितने जायदा राम बनने के, पथ पर होंगें अग्रसर,
उतनी जल्दी रावणीय प्रवृति, मरेगी, जो है अन्दर ।

अगर राम की संख्या को, बढ़ाने में सफल हैं होते,
लोग स्वयं ही आगे बढ़, बनने को राम हैं आते ।
निश्चित रूप से रावण का, प्रभाव जगत में घटेगा,
अमन जो दिखती कोसों दूर, आकर पास दिखेगा ।

रावण जलाने की जगह, राम बनाने का कार्य करेगें,
शनैः शनैः यह रावण धरा से, खुद ही चले जायेगें ।
तब धरती पर सतयुग सा, माहौल पुनः आएगा,
रावण का नामोनिशाँ नहीं, राम ही राम सिर्फ होगा ।

---------o--------

दीपक

हाँ, मैं हूँ एक छोटा दीपक,
पर अँधेरे का पथ प्रदर्शक ।
बनकर एक स्रोत, प्रकाश का,
दिखाता मैं पथ, प्रभास का ।

तिमिर का होता जब शासन,
रहता अज्ञानता का आसन ।
मैं अविवेक को तब हटा,
रौशन करता पथ तम घटा ।

मैं स्वयं प्रतिपल जलता हूँ,
नहीं किसी को छलता हूँ ।
छोटा सा होता जीवन मेरा,
देता दूसरों को सुख घनेरा ।

मेरा जीवन पूर्णतः समिक,
त्याग का मैं पर्याय, प्रतीक ।
सेवा मेरा होता निःस्वार्थ,
भावना केवल एक परमार्थ ।

जबतक रहता जीवन मुझमें,
रहता परहित ही भाव सदा ।
करता रहता संघर्ष सतत मैं,
और काटता रहता तम सदा ।

हौसला मैं रखता सदा बुलंद,
तम का मैं करता दर्प खंड ।
आता जब दानव बन समक्ष,
खड़ा दृढ रहता सदा विपक्ष ।

प्रगति पथ में तम रखती कील,
लौ देती शक्ति, रखने को शील ।
तनी तमकी नशें, पड़ जाती ढील,
दिखने लगता है पथ का मील ।

दिशाहीन कर देती तम है,
पथ से भटका देती तम है ।
विवेक शून्य हो जाते जन हैं,
आँखों आगे जब होता तम है ।

इन कठिन क्षणों में लेकर,
मैं आता हूँ सतत उजास ।
करता पथको रश्मि रंजीत,
भरता जीवन में हूँ उल्लास ।

मिट्टी कोमलता का प्रतीक,
जलनेवाला तेल नम्रता, स्नेह ।
माध्यम रुई का रंग सफेद,
शुद्धता, शांति, ज्ञानका संकेत ।

धारण हलाहल कर शिव भोले,
जगत में नीलकंठ कहलाये ।
जग आलोकित कर बाती भी,
श्वेत रंग छोड़ श्याह पड़ जाये ।

दीपक को करते प्रज्वलित जब,
लौ उठता उसका ऊपर ओर,
उसकी उन्नति का परिचायक,
काटता जो पथ का तिमिर घोर ।

अंतर का दीप जो बुझ चुके हैं,
प्रेम पियूष जो सुख चुके हैं ।
हृदय रसधार जो मंद हुयी है,
करुणा सागर जो बंद हुयी है ।

फिर से इसे जलाओ तुम,
ज्ञान प्रकाश फैलाओ तुम ।
सतत अथक बढ़ते रहो,
दीपक की भांति जलते रहो ।

जैसे दीपक जलता सतत,
जगत में दूसरों के लिए ।
ये मनुष्य, तुम भी बनो वैसा,
अपने लिए जिए तो क्या जिए **?**

---------o--------

जिन्दगी

कुदरत की दी हुयी अनमोल है ये जिंदगी,
आयें खुले दिल से करें हम इसकी बंदगी ।
मिलती है एक बार यह, जियें खुले मन से,
महके जगत में जैसे, पुष्प सौरभ चमन से ।

सुख-दुःख, धूप-छाया, होंगे इसके सफर में,
मिलेंगे पथ में काँटे, इस सफर के डगर में ।
पगपग पर मिलेंगे हमें, नवीन नित्य चुनौती,
बाधा-विघ्न, मुश्किलों में, होगी नहीं कटौती ।

मुसीबतें कदम कदम पर, हैं यहाँ बिछे हुए,
पथमें काँटे और नुकीले तार है निकले हुए ।
यहाँ पर हर जगह ही, बिगड़े हुए माहौल हैं,
देशद्रोही तत्व तंत्र का, उड़ा रहे माखौल हैं ।

बिगड़े हुए माहौल में, दुष्टों से होगा सामना,
जैसे पथमें जलजला, का औचक ही फूटना ।
पाषाणों में दब गयी, गंगा की निर्मल प्रवाह,
सुखों के सागर सुखे, दुखोंकी दरिया अथाह ।

जीवन न फूलोंकी सैय्या, काटों से भरी सेज,
सत्यपथ पर कर्मकांड, करने की यह दहेज़ ।
जीवन और कष्ट यहाँ, एक सिक्के के पहलु,
कर्म-प्रधान होता सुख, नहीं किसीका टहलु ।

जानें यह सतयुग नहीं, कलयुग कल्मष युक्त,
सत्व का वर्चस्व नहीं, लोग रज, तम से युक्त ।
कुदरती पदार्थों के प्रति, कामना रहती भरपूर,
प्राप्त करें इसे कैसे भी, पर रहें कर्म से दूर ।

सत्य से नाता जोड़ना, आज समझते हैं भूल,
कर्तव्यकर्म करना मानते, जीवन पथमें शूल ।
इंद्रियोंके ऊपर मनका, रहता सदा अधिकार,
मन होता बड़ा चंचल, ले जाता पतन कगार ।

सोच हमारी क्लिष्ट सदैव, रहते हैं नहीं सरल,
जिंदगी जाती उलझ, बन रह जाती है गरल ।
जीना होजाता दुष्कर, लगता आगये कहाँ हम,
किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते, जग लगता पुर यम ।

विचारशक्ति हो मजबूत, तो होगा सब आसान,
जीवन पथमें पड़े हों, क्यों न चाहे बड़े पाषाण ।
इच्छा और आवश्यकता, में जाने करना फर्क,
नहीं तो अच्छी जिन्दगी, भी बन जायेगी नर्क ।

कर्तव्य कर्म करने में, हो तनिक नहीं आलस,
और सत्य पथ पर चलने का, रखें हम साहस ।
पथमें कितने भी पड़े हों, बाधा-विघ्नों के शूल,
सबको उखाड़ फेकोगे, कर दोगे उन्हें निर्मूल ।

तब तिमिर से भरे पथ में, फैलेगा पूर्ण उजास,
और जिंदगी होगी सरल, संग विजयका प्रभास ।

---------o--------

भज गोविन्दम्

भज गोविन्दम् मूलतः संस्कृत में रचित श्रीमद आद्य शंकराचार्यजी की कृति है जो वेदांत का सार समझाती है और मनुष्य को सोचने के लिए प्रेरित करती है कि मुझे यह जीवन क्यों मिला? मैं भौतिकता में क्यों उलझ गया हूँ? जीवन का उद्देश्य क्या है और कैसे इसे प्राप्त किया जा सकता है? सहज रूप में समझने के लिए इसे सरल हिंदी कविता के रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आशा करता हूँ इसे पढ़कर, समझकर और जीवन में उतारकर जीवन व्यतीत करने से जीवन में सकारात्मकता बढ़ेगी।

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम्, गोविन्दं भज मूढ़मते।
संप्राप्ते सन्निहिते काले, न हि न हि रक्षति डुकृञ् करणे । 01

मानव जन्म मिला है मूर्खों, करनेको खुद का उद्धार,
गोविंद और केवल गोविंद भज, और न कोई विचार ।
अन्त समय जब आयेगा, तजने को यह निज धाम,
व्याकरणों के नियम भी तेरे नहीं आयेगें कोई काम ।
मोहग्रसित बुद्धियुक्त मानव, चाहते हो यदि कल्याण,
गोविंद को भज, भज गोविंद को, लगा उन्हींमें ध्यान ।

मूढ़ जहीहि धनागमतृष्णाम्, कुरु सद्बुद्धिमं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तम्, वित्तं तेन विनोदय चित्तं ।   02

मोहितों, त्यागो लोभ अपना, धन एकत्र करने का,
त्यागो समस्त कामना मनसे उन्हें पूर्ण करने का ।
सत्य के पथ का अनुसरण, करो अपने जीवन में,
अपने अथक परिश्रम से आता जो धन जीवन में ।
उसी प्राप्त धन से अपने को रखो सतत सन्तुष्ट,
और अधिक पाने को मन में रखो न कोई भूख ।

नारीस्तनभरनाभीदेशम्, दृष्ट्वा मागा मोहावेशम्।
एतन्मान्सवसादिविकारम्, मनसि विचिन्तय वारं वारम् ।   03

नारी के सुन्दर बदन पर नहीं हो कभी आसक्त,
मूर्खों, चक्षुपान कर उसमें नहीं हो कभी मदमस्त ।
स्मरण बारम्बार इस बात का रहो सतत करते,
इसके कारण मन में कोई विकार नहीं वसते ।
जानों, ये तन केवल मांस - वसा आदि से निर्मित,
इसके अतिरिक्त न आये, कुछ भी मन में किंचित ।

नलिनीदलगतजलमतितरलम्, तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं, लोक शोकहतं च समस्तम् ।   04

मूर्खों समझो जगत में, क्या है मनुष्य का जीवन ?
कमल-पत्र पर पड़ी हुयी, पानी की बूंदों के सम ।
यह पानी की बूंदें होती, अनिश्चित और क्षणभंगुर,
नजाने कब उड़ जाये, वाष्प बन इस जगतसे दूर ।
समझो विश्व समस्त, नकारात्मकता से भरा हुआ,
रोग, व्याधि, अहंकार और दुःख आदिमें डूबा हुआ ।

यावद्वित्तोपार्जनसक्तः, तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे, वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ।   05

इस मायारूप संसार में तुम जानों सत्य का अर्थ,
धन उपार्जन करने में तुम जब-तक यहाँ समर्थ ।
तबतक परिवार के लोग सभी देगें तुमको आदर,
स्नेह प्रदर्शित कर तेरे प्रति करेगें भाव उजागर ।
परन्तु जब होजाते असक्त तब भाव बदल जाता,
सामान्य बातचीत में भी तुझको नहीं पूछा जाता ।

यावत्पवनो निवसति देहे, तावत् पृच्छति कुशलं गेहे।
गतवति वायौ देहापाये, भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ।   06

मूर्खों, स्वार्थ की पराकाष्ठा, लोगों के दिलमें रहती है,
जबतक उसे नहीं देखो तबतक नहींवो दिखती है ।
नादानों, तेरे अनित्य शरीर में जबतक प्राण रहते हैं,
तबतक ही इस दुनियामें लोग कुशलक्षेम पूछते हैं ।
जैसेही इस नश्वर शरीर से प्राण-वायु निकलती है,
उस मृत शरीरको देखकर तब पत्नी भी डरती है ।

बालस्तावत् क्रीडासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणीसक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तासक्तः, परे ब्रह्मणि कोऽपि न सक्तः।   07

जीवनके हर पड़ाव पर होती अलग-अलग है रूचि,
जबहम होते बचपन में तब खेलों में होती है रूचि ।
युवावस्था को होते प्राप्त ही रूचि बदल पूर्ण जाती,
सुंदर युवती होते दृष्टिगत ही नजर उधर खिंच जाती,
वृद्धावस्था में मनुष्य सदैव चिंताओं से घिरे है रहता,
किन्तु किसी भी पड़ाव पर प्रभु से प्रेम नहीं करता ।

का ते कांता कस्ते पुत्रः, संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं वा कुत अयातः, तत्त्वं चिन्तय तदिह भ्रातः। **08**

अपने-पराये के अमिट मोहमें रहते सदाही उलझे,
इस कदर फँस जाते उसमें सुलझाए नहीं सुलझे ।
कौन तुम्हारा पत्नी है ? और कौन तुम्हारा पुत्र है ?
सत्य सदाही जानों लोगों, जगत बड़ा ही विचित्र है ।
वंधु, तुम कौन हो?और कहाँ से आये हो जगत में,
इस बात पर पहले तुम, कर लो विचार मगज में ।

सत्संगत्वे निस्संगत्वं, निस्संगत्वे निर्मोहत्वं।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं, निश्चलतत्त्वे जीवन्मुक्तिः । **09**

संतों के सानिध्य, सत्संग, से वैराग्य प्राप्त है होता,
वैराग्य प्राप्ति के उपरांत विवेक जागृत हो जाता ।
विवेक जागृत होते स्थिर तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता,
तत्वज्ञान प्राप्त होने पर मोक्ष को प्राप्त कर लेता ।
जीवन का उद्देश्य जगत में करना मोक्षको प्राप्त,
जन्म-मरण का चक्करभी स्वतः हो जाता समाप्त ।

वयसि गते कः कामविकारः, शुष्के नीरे कः कासारः
क्षीणे वित्ते कः परिवारः, ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः।   10

विश्वमान सत्य जगत में हर समय सत्य ही रहता,
आयु बीत जानेके बाद कभी काम-भाव नहीं रहता ।
तालाब में पानी सूखने पर तालाब नहीं वह रहता ।
धन -संपत्ति के जाने पर परिवार नहीं कभी रहता ।
तत्वज्ञान, परमात्मा का ज्ञान, हो जाता जिसको प्राप्त,
उसका मूलतः इस जगतसे संबंध हो जाता समाप्त ।

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं, हरति निमेषात्कालः सर्वं।
मायामयमिदमखिलम् हित्वा, ब्रह्मपदम् त्वं प्रविश विदित्वा।   11

इस मायारुपी जगत को समझने का तुम यत्न करो,
धन, शक्ति और यौवन पर गर्व कभी तुम मत करो ।
समय बड़ा बलवान इसको, पल में कर देता है नष्ट,
होता कभी जो बादशाह, समय कर देता उसे विनष्ट ।
मनुष्यों, इस विश्वको मायासे घिरा हुआ तुम जानकार,
ज्ञान अध्ययनके माध्यमसे ब्रह्मपद में तुम प्रवेशकर ।

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः, शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि, न मुन्च्त्याशावायुः। **12**

काल नहीं कभी स्थिर रहता, सदा बदलता रहता,
सृष्टिका क्रम भी काल बदलने सेही चलता रहता ।
दिन और रात, सुबह और शाम, ऐसे ही होते हैं,
शिशिर, वसंत भी कालचक्र में आते-जाते रहते हैं ।
कालकी इस क्रीड़ाके संग जीवन नष्ट होता रहता,
पर, इच्छाओं का अंत कभी जीवनमें नहीं है होता ।

काते कान्ता धन गतचिन्ता, वातुल किं तव नास्ति नियन्ता।
त्रिजगति सज्जनसं गतिरैका, भवति भवार्णवतरणे नौका। **13**

विचलित, मोहित मनुष्यों क्यों, भौतिकता में डूबे रहते ?
पत्नी और धन की चिंता क्यों, हरवक्त करते रहते ?
उनका कोई नहीं है नियंत्रक, ऐसा क्यों सोंचते रहते ?
तेरे लिए कोई मार्गदर्शक, क्या पास नहीं कोई रहते ?
जानों तीनो लोकों में, सज्जन और सत्संग का साथ,
इस भवसागर से पार करनेको है नौका रूपी हाथ ।

जटिलो मुण्डी लुञ्छितकेशः, काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढः, उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः। **14**

मोहितों, जिसको स्वयं ही हुयी नहीं आत्म-अनुभूति,
वो कैसे वन सकता है इस जगतके लिए विभूति ?
बड़ी जटाएं, गंजे सिर, विखरे बाल, भगवा आवरण,
भांति भांति के वेश जगतमें लोग करते हैं धारण ।
अपना पेट भरने हेतु यहाँ, लोग सभी यह करते,
मोहित मनुष्यों, देखकर भी, देख नहीं क्यों पाते ।

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जतं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्। **15**

मोहित मनुष्यों, देखो तुम, आज के लोगों का हाल,
अंग-अंग हो गए हैं क्षीण पा वृद्धावस्था का काल ।
या तो सिर उनका गंजा या फिर पके हुए है बाल,
मुख में कोई भी दाँत नहीं, जिससे हो रहे बेहाल ।
और हाथ में लेकर दंड वे शनैः शनैः हैं चल रहे,
फिरभी वृद्ध वह आशा-पाशसे बंधकर हैं चल रहे ।

अग्रे वह्निः पृष्ठेभानुः, रात्रौ चुबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षस्तरुतलवासः, तदपि न मुञ्चत्याशापाशः। **16**

वो मनुष्य भी जो अधिक ठंड में सूर्यास्त के बाद,
रात्रि होने पर आग जलाता अपने निवास के पास ।
और बैठ जातावो पास, निज घुटनोंमें सिर छुपाकर,
बचाता ठंड से अपने आपको गरमाहट को पाकर ।
भीख माँगकर खानेवाला, वृक्षों के निचे सोनेवाला,
वहभी नहीं बनपाता, इच्छाओं का बंधन तोड़नेवाला ।

कुरुते गङ्गासागरगमनं, व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहिनः सर्वमतेन, मुक्तिं न भजति जन्मशतेन। **17**

मनुष्यों सबसे पहले जानों तुमसब ज्ञान का महत्त्व,
ज्ञान बिना तुम पा नहीं सकते मुक्तिरूप परमतत्व ।
किसी भी घर्म के अनुसार ज्ञान रहित तुम रहकर,
या गंगासागर जाकर, उसमें तुम डुबकी लगाकर ।
व्रत रखने से या दान देनेसे ज्ञान नहीं आ सकती,
सौ जन्मों मेंभी मुक्ति कभी प्राप्त नहीं हो सकती ।

सुर मंदिर तरु मूल निवासः, शय्या भूतल मजिनं वासः।
सर्व परिग्रह भोग त्यागः, कस्य सुखं न करोति विरागः। **18**

यदि संकल्परूपी निष्ठा का मन में हो दृढ विश्वास,
देव मंदिरमें या किसी बृक्षके निचे रखें हों निवास ।
पृथ्वी को ही शय्या मानकर, उसपर ही सोनेवाले,
सांसारिकता से होकर अलग, अकेले ही रहनेवाले ।
सभी सुखों, संग्रहों का त्याग, करनेवाले वैराग्य से,
किसे आनंद की प्राप्ति नहीं, होगी ऐसे सौभाग्य से ।

योगरतो वाभोगरतोवा, सङ्गरतो वा सङ्गवीहिनः।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं, नन्दति नन्दति नन्दत्येव। **19**

भिन्न-भिन्न तरीकों से जीवन जीनेको लोग अभ्यस्त,
कुछ होकर योग में रत, जीवन जीते निज हैं मस्त ।
और कुछ लोग यहाँ सांसारिक भोगों में ही व्यस्त,
जगत से हो कोई आसक्त, कोई हो उससे विरक्त ।
करो यकीन जिस कोई का, ब्रह्म में मन लग जाता,
वो ही आनंद करता है और वही आनंद है पाता ।

भगवद् गीता किञ्चिदधीता, गङ्गा जललव कणिकापीता।
सकृदपि येन मुरारि समर्चा, क्रियते तस्य यमेन न चर्चा। **20**

भगवद गीता, ज्ञान का सागर, उपलब्ध इस जगत में,
अध्ययन कर थोड़ाभी उसको उतारा निज जीवन में ।
या भक्तिरूपी गंगाजल, कणभर भी जिसने पिया है,
भगवान श्री कृष्ण का नाम, ह्रदय से कभी लिया है ।
समुचित प्रकार से उनकी, पूजा किया हो एक बार,
उनकी चर्चा होती नहीं, कभी भी यम के दरबार ।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे । **21**

बार-बार जग लेना जन्म और बारम्बार पाना मरण,
बार-बार जननी के गर्भ में, जन्म हेतु करना शयन ।
इस जन्म-मरण के चक्रमें करते रहना यूँ हीं भ्रमण,
प्रभु इस अनित्य संसार में, अजीब है यहाँका चलन ।
इस संसार से पाना पार, बहुत ही है कठिन दुष्कर,
हे कृष्ण मेरी रक्षा करें आप, मुझपर दया दिखाकर ।

रथ्या चर्पट विरचित कन्थः, पुण्यापुण्य विवर्जित पन्थः।
योगी योगनियोजित चित्तो, रमते बालोन्मत्तवदेव । **22**

वो मनुष्य जो बदन ढका निज फटे हुए कपड़ों से,
कपडा, रथ के निचे आनेके कारण बने चिथड़ों से ।
वह चतुर मनुष्य जो चलरहा अपने जीवन पथ पर,
पथ जो है वह, सम्पूर्ण पुण्य और पापों से हटकर ।
और योगी जो अपने चित्त को, योग में लगानेवाला,
वही होता बालक सम, सदैव आनंद में रहनेवाला ।

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः, का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारम्, विश्वं त्यक्त्वा स्वप्न विचारम्। **23**

तुम कौन हो?मैं कौन हूँ? आया कहाँसे इस जगमें,
मेरी माता कौन व पिता कौन? जानों इसे मगजमें ।
तुम पंचतत्व से निर्मित एक, नहीं हो केवल काया,
सारे सम्बन्ध इस काया के हैं, जानों सम्पूर्ण माया ।
बिना जाने इसे, तुम रहते, काल्पनिक एक जगत में,
सांसारिकता में उलझ रह, रहे आसक्त हो उनमें ।
सब प्रकार से इस विश्व को, तुम असार समझकर,
सम्पूर्ण रूप से इसे त्याग दो, एक स्वप्न समझकर ।

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुः, व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं, वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्। 24

अज्ञानियों जानों यह जगत, है रचा हुआ विष्णु का,
तुममें, मुझमें, हर जगह में, रहता निवास विष्णु का ।
होकर अधीर तुम व्यर्थ ही, जग में क्रोध करते हो,
विष्णु तुम्हारे अन्दर ही, पर समझ नहीं सकते हो ।
यदि प्राप्त करना चाहते हो, तुम शाश्वत विष्णु पद,
समान चित्त वाले हो जाओ, तुम रखनेवाले महज ।

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ, मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं, सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्। 25

जीवन में जो समय मिला है, समझो उसका अर्थ,
लड़ाई-झगड़ा, सन्धि-मित्रता, में नहीं गंवायो व्यर्थ ।
हो कोई भी, शत्रु - मित्र, पुत्र, या कोई बंधू बान्धव,
प्रेम और द्वेष करो नहीं, जग में रह कभी मानव ।
सबसे अच्छा, सब में देखो, तुम खुद अपने-आपको,
भेद रूपी अज्ञान जो सर्वत्र, तुरंत उसको त्यागदो ।

कामं क्रोधं लोभं मोहं, त्यक्त्वाऽत्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञान विहीना मूढाः, ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः। **26**

आत्मज्ञान रखनेवाला नर, जान पाता वह स्वयं को,
किसलिए वह आया जग में, जान पाता है उसको ।
इसलिए तुम काम, क्रोध और लोभ, मोह को छोड़कर,
मैं कौन हूँ?स्वयंमें स्थित हो, इसपर तुम विचारकर ।
आत्मज्ञान से रहित व्यक्ति, है जोभी इस संसार में,
अनंत काल तक छिपे-पड़े, रहते नर्करूप संसारमें ।

गेयं गीता नाम सहस्रं, ध्येयं श्रीपति रूपमजस्रम्।
नेयं सज्जन सङ्गे चित्तं, देयं दीनजनाय च वित्तम्। **27**

जिन भगवान विष्णु ने रचा, यह सृष्टि अतिशय सुंदर,
उनके सहस्र नामों को याद, करो सदैव तुम गाकर ।
उनके सुन्दर रूपका तुम, मनसे अविरत ध्यान कर,
और सच्चे ह्रदय से सदा, भगवद गीताका गान कर ।
अपने मनको लगाओ तुम, सदा सज्जनों के संग में,
और अपने धनको लगाओ तुम, गरीबों के उमंग में ।

सुखतः क्रियते रामाभोगः, पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं, तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्। **28**

इस जगत में आकर लोग, सुख के लिए तरसते हैं,
और सुखके लिए सभी यहाँ, आनंद भोग करते हैं ।
जिसके बाद मनुष्य के बदन में, हो जाता बहु रोग,
वेदना, संताप का सागर बन, तन रहता नहीं निरोग ।
मालूम यद्धपि पृथ्वी पर है, मरणा सबको ही निश्चित,
पापमय आचरण जीवन में, छोड़ नहीं पाते किंचित ।

अर्थंमनर्थम् भावय नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभजाम् भीतिः, सर्वत्रैषा विहिता रीतिः। **29**

धन कभीभी कल्याणकारी, होता नहीं इस जगत में,
कभी नहीं दे सकता यह वास्तविक ख़ुशी जीवन में ।
सभी प्रकारके अर्थ ही होते, हैं जगत में अनर्थकारी,
प्रतिदिन रखो ऐसे ही विचार, होते यह विनाशकारी ।
धनवान व्यक्ति खुद ही सदा, निज पुत्रों से डरते हैं,
सबको पता ऐसे उदाहरण, जगतमें बहुत मिलते हैं ।

प्राणायामं प्रत्याहारं, नित्यानित्य विवेकविचारम्।
जाप्यसमेत समाधिविधानं, कुर्ववधानं महदवधानम्। **30**

प्राणायाम मतलब श्वास-प्रश्वास की गति का नियमन,
स्थापित करना स्वायत्त तंत्रिका प्रणाली पर नियंत्रण ।
उचित आहार, आवश्यक मिलता पोषक तत्व जरुरी,
संसार की अनित्यता पर नित करना विचार जरुरी ।
प्रेम से लेकर नाम प्रभु का, जाप सदा करते रहो,
समाधि में ध्यान लगा तुम, सदैव ध्यान लगाते रहो ।

गुरुचरणाम्बुज निर्भर भक्तः, संसारादचिराद्भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानस नियमादेवं, द्रक्ष्यसि निज हृदयस्थं देवम्। **31**

जो भी गुरु के चरणों में, झुक जाता सच्चे हृदय से,
पाता मुक्ति, छूटता उसका, आवागमन इस जगत से ।
तुमभी भक्त बन, गुरु चरण में, लेलो आश्रय अपना,
मुक्ति मिलेगी, छूट जाएगी, गमनागमन की गणना ।
इस प्रकार तु मन एवं इन्द्रियों का पूर्ण निग्रह कर,
अपने हृदय में स्थित प्रभु के सदैव तुम दर्शन कर ।

मूढः कश्चन वैयाकरणो, डुकृञ्करणाध्ययन धुरिणः।
श्रीमच्छम्कर भगवच्छिष्यै, बोधित आसिच्छोधितकरणः। **32**

व्याकरण के नियमों में मूढ़, वैयाकरण गया उलझ,
और उन नियमोंको वह मूढ़, कर पाया नहीं कंठस्थ ।
इस प्रक्रिया में उसका संकीर्ण, द्दष्टिकोण गया सुधर,
और आंतरिक सद्‌गुण उसमें, सहसा होगया मुखर ।
उसके माध्यम से बुद्धिमान, भगवान शंकर के शिष्य,
प्रेरित किये गए बोध प्राप्ति को ताकि सुधरे भविष्य ।

भजगोविन्दं भजगोविन्दं, गोविन्दं भजमूढमते।
नामस्मरणादन्यमुपायं, नहि पश्यामो भवतरणे। **33**

भज गोविंदको, भज गोविंदको, गोविंदको भज मूढ़मते,
गोविंद से ही प्रेम करो तुम, वही वतायेगें सही पते ।
भगवान गोविंद नाम जपके, अतिरिक्त इस जगत में,
नहीं कोई है अन्य मार्गजो, रौशनी दे जीवन पथ में ।
यही नाम जपही तुझे इस, संसार रूपी भवसागर से,
पार लगायेगा पूर्ण तुझे, मृत्यलोक रूप दुःखसागर से ।

और अंत में,

गीता ज्ञान रूपी अमृत का, कर लो थोड़ा पान,
वैतरणी पार कर जाओगे, पाओगे परम -स्थान ।
कोई नहीं किसी का जग में, समझो इसे असार,
स्थूल कायाका संबंध केवल, आत्मा अगम अपार ।
परमात्मा तुम्हारे अंदर स्थित, लगाओ उनमें ध्यान,
गोविंदको भज, गोविंदको भज, मुक्ति करेगें प्रदान ।
आवागमन के चक्रव्यूह को, तोड़ तभी तुम पाओगे,
और सत्, चित, आनंद को, प्राप्त तभी कर पाओगे ।

---------o--------

शांति

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ संग ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार,
शास्त्र-सम्मत सीमा से जब, कर जाते सब पार ।
तब मानव में मानवता के गुण में होता है ह्रास,
और अन्तर की निर्मलता में रहता नहीं प्रकाश ।

सृष्टि में केवल मनुष्यमात्र ही है ऐसा एक प्राणी,
विचार करने की शक्ति जिसमें ईश्वर से वरदानी ।
उपयोग कर जिसका कर सकता जगतका उद्धार,
और स्थापित कर सकता जग, शांति का संसार ।

नकारात्मकता विचारशक्ति में तो शांति जल जाती,
अथक प्रयासोंके बाद भी समराग्नि नहीं टल पाती ।
अपने घर परिवारके हों या राज्य, देश और दुनिया,
जलने लगते इस अग्नि में, लगती निकलने चिंगारियाँ ।

बिना विचारशक्ति के मानव पशु सदृश्य हो जाता,
और पशुताका संपूर्ण गुण, उसके अंदर बस जाता ।
अपनी भूख के सिवा दूसरों की कोई परवाह नहीं,
दूसरा मरता या जीता, जानने की कोई चाह नहीं ।

विचारशक्तिके बिना तो होती बौद्धिक क्षमता अस्त,
आसुरी, राक्षसी प्रवृतियां तीब्र अंतर में होती सशक्त ।
उसे क्या चाहिए, कितना चाहिए, ज्ञान नहीं है रहता,
नेत्रों के सम्मुख जो दृष्टिगत, सब मेरा वह कहता ।

हिटलरसे पूछा था किसीने क्यों करते हो अत्याचार,
मरणोपरांत तो तुम्हें मिलेगा, सिर्फ दो गजका संसार ।
पलटके बोला, मृत व्यक्ति वास्ते भू दो गज काफी है,
पर जीवित व्यक्ति के लिए सारा संसार नाकाफी है ।

कामनाओं का सागर सदैव मानव के अंदर रहता है,
इच्छाओं का ज्वार-भाटा उसमें उमड़ता ही रहता है ।
इच्छित इच्छाएं मानव की जब होती नहीं यहाँ पूर्ण,
और बाधाएं पथ में आकर कर देती उसे चूर्ण-चूर्ण ।

अपूर्ण कामना से अंतस में क्रोध उत्पन्न हो जाता,
क्रोध उत्पन्न होने से मनुष्य में मूढ़भाव आ जाता ।
मूढ़ता छाजाने से मनुष्य की स्मृति भ्रष्ट हो जाती,
सद्विचारों से प्राप्त निर्णय जो, याद नहीं रह जाती ।

और स्मृति के नष्ट होने पर विवेक नाश हो जाता,
विवेक नाश होजाने पर मनुष्य का पतन हो जाता ।
एक पतित व्यक्ति का चित्त, कभी शांत नहीं रहता,
फिर उसके अंदर हो शांति, बात नहीं यह बनता ।

अशांत चित्तवाला प्राणी कभी शांतिका नहीं पक्षधर,
कटता उसका जीवन सदा आलस, प्रमादसे भरकर ।
रजोगुणी वृतियोंके कारण रहता वो स्वार्थ से लिपटे,
दूसरोंके सुखपर टूट पड़ता, स्वान रोटी ज्यों झपटे ।

व्यक्ति के अशांति से सदैव रहता परिवार अशांत,
फिर समाज, राज्य, देश और विश्व होजाता अशांत ।
सर्वत्र होती अराजकता, नहीं शांति का नामोनिशान,
पूनम जैसी दुनिया में, अमावस का होता फरमान ।

आज जगत संपूर्णमें छाया हुआ अशांति का मेला,
अपनी सुख-शांति हेतु कर रहे, हैं दूसरों से खेला ।
भूल जाते दूसरा भी उनके साथ वही है कर रहा,
अशांति का स्फुलिंग जो अंगार बननेको बढ़ रहा ।

रूस-यूक्रेन, इसराइल-हमास, युद्धसे दुनिया दहल रही,
बांग्लादेश की धार्मिक सनक, भी उसीओर बढ़ रही ।
पाक-अफगान, इसराइल-ईरान, लगता लेगा नया मोड़,
सुलगी अगर तो देगी यह, विश्व शांति की कमर तोड़ ।

आतंकवाद का जहर विश्व में अशांति को बढ़ा रहा,
सामाजिक, आर्थिक विषमताभी आगमें घी डाल रहा ।
मैं और मेरे धर्म, संस्कार, केवल दुनिया में सर्वश्रेष्ठ,
ऐसी विकृत सोंचसे शांति स्थापित नहीं होती यथेष्ट ।

शांति के लिए जगत आज अशांति से युद्ध लड़ रहा,
और इस प्रयास में अपेक्षित सफलता नहीं मिल रहा ।
प्राकृत पदार्थों की प्राप्ति में मानव शांति तलाश रहा,
उसे पता नहीं, इन पदार्थों से प्राप्त शांति क्षणिक रहा ।

शांति का वास्तविक स्रोत तो होता उसके अंदर ही,
पर सत्य से अनभिज्ञ मनुष्य ढूंढता इसको बाहर ही ।
शाश्वत शांति होती प्राप्त सदैव आन्तरिक स्थिरता से,
और अंतरकी स्थिरता आती मनकी पूर्ण स्थिरता से ।

पर मन होता अति चंचल स्थिर करना आसान नहीं,
दीखता नहीं पर होता है बलवानों से बलवान कहीं ।
मन से बड़ा न शत्रु जग में, और मनसे बड़ा न मीत,
मन के हारे हार जगत में, तथा मन के जीते जीत ।

पर ऐसा भी नहीं की मन कभी स्थिर नहीं है होता,
सतत अभ्यास और वैराग्यसे मन सदा शांत है होता ।
वैराग्य का मतलब संसार के भोगों से राग हटाना,
अगर यह आता भी है, तो उसकी उपेक्षा कर जाना ।

मन के स्थिर होतेही आंतरिक शक्ति जागृत हो जाता,
आंतरिक शक्ति उत्पन्न होते, जागृत विवेक हो जाता ।
याद रखें आंतरिक शक्ति ही होती विश्व शांतिकी हेतु,
देश और दुनिया के बीच में बनता है अमन का सेतु ।

अंतर्विकारों से जगत के मानव होगें जब पूर्णतः दूर,
निष्काम कर्म करने की भावना होगी उनमें भरपूर ।
तब पूर्ण समत्व भाव रख देखेगें, वे राजा, रंक, फकीर,
और होगी शाश्वत अमन, इस अशांत विश्वके तकदीर ।

सभी मनुष्य अपने जीवनमें रहना चाहता है शांति से,
देश, विश्व की शांति हेतु वो करता स्तुति जगदीश्वर से ।
शांत वातावरण में मनुष्य का होता विकास रचनात्मक,
विषय कोई हो, रख सकता, अपना विचार सकारात्मक ।

शांति में ही प्रगति निहित, समृद्धि की पहली सीढ़ी,
आपसी विश्वास सहयोग के लिए होती शांति जरुरी ।
शांति ही हमारे जीवनमें जोड़ सकती नवीन आयाम,
शांत मन से क्लिष्टतम काम भी हो जाते हैं तमाम ।

अशांति से पीड़ा व कष्ट और शांति से सुख सम्पन्न,
अशांति से जग विखंडन और शांति ह्रदय का संगम ।
शांति सत्व गुण का प्रतीक, अशांति रज और तमस,
अशांति में जीवन नीरस और शांतिमें होती है सरस ।

अधर्म अवनि पर मुखर होकर फैलता जब पैर पसार,
और अशांति का तांडव रच निगलने को होता संसार ।
तब - तब धरती पर युगपुरुष बन ईश्वर लेते अवतार,
अधर्मियों का अंत कर भू पर शांति का करते प्रसार ।

त्रेतायुग में रावण का भू पर बढ़ गया जब अत्याचार,
मेरे समक्ष नहीं कोई जगमें कहता फिरता था संसार ।
सीताहरण कर अत्याचार का करगया जब सीमा पार,
शांति हेतु राघवने किया तब समूल वंश उसका संहार ।

द्वापर में क्रूर कंसने किया जब आचार का अतिक्रमण,
अपने बुराचार पाखंड से प्रजा-शांति का किया हनन ।
तब शांति की रक्षा हेतु स्वयं, ईश्वर धरा पर हुए प्रकट,
बधकर शांति किये स्थापित, मिटा वहां पर छल-कपट ।

कलयुग में भी वक्त-वक्त पर तानाशाहों ने जन्म लिया,
कर अत्याचार प्रचण्ड प्रजा पर शांति उनसे छीन लिया ।
तभी कोई महामानव आया या जनता ने विद्रोह किया,
और धरा से उसे हटाकर शांतिका पुनः उद्घोष किया ।

इस अशांत जगत में हर कोई परिपूर्ण शांति है चाहता,
शांति का कोई विकल्प नहीं, जीवन की है आवश्यकता ।
किसी भी मोल पर मिले शांति समझो मिल गयी सस्ती,
समत्व भाव रख करो स्थापित, वरना मिट जाएगी हस्ती ।

---------o--------

पतझड़

प्रकृति में पतझड़ एक बदलाव का प्रतीक है। जगत परिवर्तनशील है। जो आज है कल नहीं होगा। पतझड़ भी प्रकृति में एक जीवन के अंत का सूचक है। पर जीवन यहीं समाप्त नहीं होता है, एक नया सबेरा उसका इंतजार करता है। पतझड़ के बाद वसंत आता है और पुनः नए जीवन में वसंत बहार आ जाता है। जैसे धरा पर लोग आते-जाते रहते हैं वैसे ही प्रकृति के ऋतुओं में भी सतत परिवर्तन होता रहता है। और शायद यही जीवन है । इसी को कविता के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

जैसे रजनी और दिन का, चक्र एक है होता,
अँधेरा-उजाला का भी, वैसाही क्रम है होता ।
सुख और दुःख जीवनमें, जैसे आती-जाती है,
ऋतुएँ भी प्रकृति में, वैसे ही आती-जाती है ।

पतझड़ का ऋतुओं में, होता महत्त्व है अपना,
शिखर पर पहुँच कर, अवनि की ओर गिरना ।
कहती है हरदम, खुद पर गुमान नहीं करना,
जो दीखता आज स्थायी, कल उसे नहीं रहना ।

पतझड़ यह बताती, बदलाव बहुत ही जरुरी,
जो हो गये जीर्ण शीर्ण, हटना उनका जरुरी ।
जीवन ही ठहर न जाये, एकरस न हो जाये,
विखरे पत्तों की जगह पर, पात नवीन आये ।

पतझड़ के मौषम में, हवा रूखी काफी होती,
नमी का अवशोषण कर, उसे शुष्क बना देती ।
पेड़ोंसे पत्ते सुख कर, पतझड़ में झड़ने लगते,
समय के कुछ पलमें, तरु पात विहीन दीखते ।

सूखे पत्ते झड़े तरुवर से, जमा जमीं पर होते,
उदास और भयावह एक, दृश्य प्रस्तुत करते ।
पत्तियों के गिरने से, हरियाली गायब हो जाती,
एक अजब खालीपन का, एहसास करा जाती ।

बृक्ष अपना वैभव संपूर्ण, खो वैभवहीन होता,
हरा-भरा रहनेवाला बृक्ष, ठूंठ रह बच जाता ।
सृष्टि भी इस पतझड़ से, रहती नहीं अछूती,
सुन्दरता उसकी घटकर, न्यूनतम रह जाती ।

पतझड़ में प्रकृति की, रंगत बदल है जाती,
और एक नयी प्रकृति, सर्वत्र दिखायी पड़ती ।
कवियों के ह्रदय के सब, उदगार सुख जाते,
पल्लवहीन तरु देख, सभी खग विकल होते ।

प्रकृति के परमाणु बम सम, काल यह होता,
वसुंधरा सम्पूर्ण सुंदरता से, कंगाल हो जाता ।
प्रकृति के तबाही का, दीखता वीभत्स मंजर,
मानों सुंदरता में किसी ने, मार डाला खंजर ।

रूद्र ने प्रकृति में मानों, तांडव नृत्य किया है,
सृष्टिकी सुंदरता का, अंत कर हरण किया है ।
इसके साथ ही एक युगका हो गया हो अंत,
नवयुग का होगा आगमन, इच्छानुसार अनन्त ।

महाप्रलय के बाद जैसे होता सृष्टि का अंत,
वैसेही धरती की शोभा, पतझड के संग अंत ।
महाप्रलय का मंजर भी सदा नहीं है रहता,
कालोपरान्त नव सृष्टि, पुनः वसुधा पर आता ।

पतझड़ भी प्रकृति का, एक स्वाभाविक चक्र,
समय साथ इसका भी, अन्त ही होता हश्र ।
प्रकृति में हर चीज का, होता सदा अवसान,
एक नये सिरे से पुनः, सबका होता प्रयाण ।

पतझड़ पश्चात् धरा पर, आता सुखद वसन्त,
जो भी अवसाद धरा पर, होता सबका अंत ।
पात विहीन तरुवर में, नव पल्लव आ जाते,
रूखी सुखी धरती पर, हरियाली छा जाते ।

हरे-भरे ताजे नव, पत्तियों से पेड़ ढक जाते,
प्रकृति खोयी सुन्दरता, प्राप्त पुनः कर लेते ।
पतझड़ प्रकृति में होती, परिवर्तन का प्रतीक,
सब दिन एक न होते, उदाहरण एक सटीक ।

पतझड़ एक पड़ाव, पुरानी चीजें होती खत्म,
और नए सिरेसे चीजें, नयी लेने लगते जन्म ।
कोई मौका जाते चूक, जीवन न जाता रुक,
आते मौके नवीन और स्वीकारते बन मूक ।

खराब आदतें और विचारों को जानें पतझड़,
छोड़कर इन्हें जीवन से, आगे हम सकें बढ़ ।
वसंत अगले मोड़ पर, कर रहा होता इंतजार,
लाता जीवन में हरियाली, छाता वसंत बहार ।

पतझड़ हमें सिखलाती, दुःख में नहीं घबराना,
आज अँधेरा आगे, तो कल तय प्रकाश आना ।
हर मुश्किल के बाद, अच्छी चीजें होती प्राप्त,
कठिन दिन आनेसे, जीवन नहीं होता समाप्त ।

बृक्ष सदैव मूक रहता, पत्ते जब उसके गिरते,
और मूक ही वह रहता, जब पत्ते नव आते ।
मानव भी सुख-दुःख में, सम रहे तो अच्छा,
घटना भी वही घटता, जो होती रबकी इच्छा ।

पतझड़ और वसंत, जीवन की एक सच्चाई,
जीवन रूपी तरुवर में, दोनों समाहित भाई ।

---------o--------

जीवन के सत्य

पंचतत्व से बना तन मानव, उसी में होगा विलीन,
अहं क्यों फिर इसपर इतना, जो नहीं तेरे अधीन ।
शरीर ये तेरा प्राकृत है, जानता यह सारा जहान,
आत्मा है शाश्वत सतत, लगा उसी में निज ध्यान ।

प्रभु ने तुझे दिया यह तन, करने खुद का कल्याण,
जगत में आकर हो आसक्त, भूल गए उनके ज्ञान ।
जानों मनुष्य जो सुख तुम्हें, होता प्रकृति से प्राप्त,
नश्वर इसका स्वभाव है, अगले पल होगा समाप्त ।

जो सुख होता प्राप्त तुम्हें, स्वयं को प्रभुसे जोड़कर,
आत्यन्तिक स्वभाव से, न सुख कोई उससे बढ़कर ।
जान मनुष्य यह प्राकृत सुख, होता सदैव क्षणभंगुर,
परम सुख नहीं प्राप्त होने से, कहो न खट्टे अंगूर ।

भटके जन्म - जन्म तक जब, तब मनुष्य तन पाया,
कर्म अपने निष्काम कर, करलो निर्मल मन काया ।
जगत तुम्हारा कर्मस्थल, नहीं भोग-विलास का आलय,
कर फलेच्छारहित कर्म संपन्न, पाओ परमपद आलय ।

सम्पूर्ण जगत एक माया मात्र, फँस नहीं तुम उसमें,
फंद इसका तुम काट पायेगा, रख विश्वास तू उसमें ।
निर्मल कर हिय को इतना, कट जाये तम की छाया,
भेज गोविन्द को, मिट जायेगा, आसक्ति मोह माया ।

विचारशक्ति को कर मजबूत, लगा परब्रह्म में ध्यान,
आवागमन के अमिट चक्रसे, मुक्त होगे तुम इन्सान ।
मनुष्यों, प्राकृत वस्तु नश्वर, कभी जोड़ो नहीं सम्बन्ध,
मिल जाएगी मुक्ति सभी को, काट सभी जग बन्ध ।

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार,
मुक्ति पथ में बाधाएं सब, अन्तर्मन के सब विकार ।
नश्वर पदार्थों से सम्बन्ध अपना, रखोगे जितना दूर,
आसक्ति उतनी जल्द मिटेगी, खुशी बढ़ेगी भरपूर ।

इच्छाएं नहीं जबतक शांत, अन्तर्मन रहेगा क्लान्त,
जैसे ही होगा यह शांत, स्थिर, शांति होगी प्रशांत ।
कामना ही सब व्याधि का मूल, लाते जो जीवन में,
प्राप्ति हेतु गलत पथ पर यह, ले जाता अंधेपन में ।

मनरूपी दर्पण पर तेरे, जबतक आसक्ति का धूल,
तबतक नहीं दिखेगा कुछभी, तुम्हें तुम्हारा ही मूल ।
बाह्य सफर से होता क्लिष्ट, अंतर का सफर करना,
भौतिक इच्छाएं बाधा बनती, मुश्किल होता है बढ़ना ।

जबतक मगज रूपी पात्रमें, भरे पड़े तमस विचार,
तबतक कैसे वस पायेगा, उसमे कोई सत्व विचार ।
इसलिए सबसे पहले तुम, मिटा अंतर के विकार,
स्वतः पुनः पथ खुल जायेगा, मुक्ति मार्ग का द्वार ।

हमारी आत्मा जो परमात्मा का, एक सनातन अंश,
परमात्मा हमारे ह्रदय स्थित, हम हैं उन्हीं के वंश ।
जब हम अंतर के सफर में, बढ़ेगें पावन पथ पर,
उस परमात्माके होगें दर्शन, दिव्य नेत्रोंसे खुलकर ।

प्राप्त होगा सत-चित-आनंद, रूपी परम परमानंद,
आसक्ति मिट, हट जायेगें, कर्म-बंधन के सब फंद ।
सुख-दुःख जीवन में सर्दी-गर्मी भांति आते-जाते हैं,
हर परिस्थिति में सम रहे, सच्चे मानव कहलाते हैं ।

---------o--------

शिव भजन

हे शिवशंकर भोले भगवन सबका बेड़ा पार करो,
आये जो तेरी शरण में उसका तुम उद्धार करो ।
हे शिवशंकर भोले भगवन.....

काम क्रोध मद मोह लोभ में फँसा हुआ सब जन है,
लिप्त हुए इस कदर कि उससे निकल न पाता मन है ।
काट के तामसी फंदे दिल से सद्‌गुण का संचार करो,
हे शिवशंकर भोले भगवन.....
आये जो तेरी शरण में ......

अतिशय ईर्ष्या द्वेष से जग का हो न रहा कल्याण है,
निहित स्वार्थ में होकर अंध सब हो रहा परेशान है ।
इन फंदों को काट के भोले भवसागर से पार करो,
हे शिवशंकर भोले भगवन.....
आये जो तेरी शरण में ......

सत्य अहिंसा भाईचारा हो सब रहा विलुप्त है,
जो भी पड़ा है दिल में अब तो वो भी पड़ा सुषुप्त है ।
नयी ऊर्जा दे अंतरतम में नयी जागृति प्रदान करो,
हे शिवशंकर भोले भगवन.....
आये जो तेरी शरण में ......

जगहित में कर विषपान तुम नीलकण्ठ कहलाये,
रूद्ररप धर, अरिहंत कर, सुर भयहीन कराये ।
आकर आज धरा पर शंभु, शांति शत्रु संघार करो,
हे शिवशंकर भोले भगवन.....
आये जो तेरी शरण में ......

---------o--------

कृष्ण भजन - 1

कृष्ण कन्हैया, वंशी बजैया, रास रचैया तुम ही हो,
यमुना जल में विषधर कलिया नाग नथैया तुम ही हो ।
कृष्ण कन्हैया, वंशी बजैया .....

जन्म होते ही कारागार के द्वार सभी खुल जाये,
चरण स्पर्श के हेतु शांत यमुना उफान में आये ।
माँ यशोदा को मुँह खोल ब्रह्माण्ड दिखैया तुम ही हो,
कृष्ण कन्हैया, वंशी बजैया .....

पूर्व जन्म के इच्छावश पूतना को मोक्ष दिलाये,
ग्वाल-वाल संग मथुरा वृन्दावन में गाय चराए ।
इंद्र क्रोधवश, ब्रजवासीहित शैल उठैया तुम ही हो,
कृष्ण कन्हैया, वंशी बजैया .....

भय से आतंकित ब्रजवासी को कंस से मुक्ति दिलाये,
लेकर भीम को संग मगध से जरासंध हटवाए ।
मित्र सुदामा के नैया के पार खेवैया तुम ही हो,
कृष्ण कन्हैया, वंशी बजैया .....

धर्मक्षेत्र कुरक्षेत्र मध्य जब अर्जुन को हुआ विषाद,
गीता ज्ञान से अज्ञानता काट उसे बनाया फौलाद ।
याद दिला कर्तव्य, हाथों से गांडीव उठवैया तुम ही हो,
कृष्ण कन्हैया, वंशी बजैया .....

भौतिकता के मोहजाल फँस जीवन हुआ ये अवगुण युक्त,
पिंजरे में वद्ध इस जीवन के द्वार खोल करो इसे उन्मुक्त ।
हटा आसक्ति जगा विरक्ति, मोक्ष दिलैया तुम ही हो,
कृष्ण कन्हैया, वंशी बजैया .....
यमुना जल में विषधर कलिया ......

---------o--------

कृष्ण भजन - 2

मिला न मन का मीत कान्हा जोड़ी तुझ संग प्रीत रे,
अब तो ह्रदय लगा ले कान्हा घड़ी न जाये बीत रे ।
मिला न मन का मीत कान्हा .....

मर्त्यलोक के मायाजाल में जीवन हुआ बेहाल है,
दो और दो पांच में फँसकर बना जीवन जंजाल है ।
फँस सकाम में जीवन सारा होता जा रहा व्यतीत रे,
अब तो ह्रदय लगा ले कान्हा.....
मिला न मन का मीत कान्हा .....

रिश्ते-नाते, भाई-बन्धु, यह सब एक छलाबा,
फँसकर इसमें उलझ गए हम, होता अब पछताबा ।
मार्ग बता, निष्काम पर चलने, का तुम बनकर मीत रे,
अब तो ह्रदय लगा ले कान्हा.....
मिला न मन का मीत कान्हा .....

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, ईर्ष्या को बनाया मीत,
क्षमा, धैर्य, संकल्प, त्याग, करुणा सब हुए अतीत ।
दूषित ह्रदय से गाउँ कैसे, कान्हा तेरी गीत रे,
अब तो ह्रदय लगा ले कान्हा.....
मिला न मन का मीत कान्हा .....

ऊब चूका इस जग से कान्हा, अमन नहीं कहीं पलभर,
हरपल बदले लोग यहाँ पर, अचल रहे ना क्षणभर ।
परम शांति पाऊँ हिय में, तुम जला दो पथ में दीप रे,
अब तो ह्रदय लगा ले कान्हा.....
मिला न मन का मीत कान्हा .....

जीवन में पतझड़ ही पतझड़, गायब हुआ वसंत रे,
मर्त्य लोक इस दुखालय में केवल दुःख अनंत रे ।
भाव निष्काम जगा दे दिल में, गाऊँ तेरी गीत रे,
अब तो ह्रदय लगा ले कान्हा.....
मिला न मन का मीत कान्हा .....

---------o--------

कृष्ण भजन - 3

बहुत बजायी मुरली कान्हा, अब तुम इसको छोड़ दो,
देश विरुद्ध जो वह रही धारा, अब तुम इसको मोड़ दो ।
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....

सीमा पर दुश्मन देश हमेशा, हमपर नजर गड़ाये हैं,
बार बार करते अतिकर्मण, हर बार मुँह की खाये हैं ।
कैसे उसके जिद को तोड़ूं, अपनी जिद पर अड़ा जो,
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....

हिमालय पर जमी वर्फ दुश्मन के क्रोध से पिघल रहा,
साम, दाम और दंड, भेद से, हमपर आग है उगल रहा ।
उसके अग्नि की ज्वाला को उसके घर ही मोड़ दो,
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....

सीमा पर दुश्मन के गोले, जलद बूंद सा टपक रहे,
पलभर में हीं हँसते-गाते, जीवन को हैं लपक रहे ।
आ जा गिरिधर उठा गोवर्धन, रक्षा कवच बेजोड़ दे,
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....

प्राकृतिक आपदाएं हर दिन, देश को कर रहे त्रस्त हैं,
कभी अतिवृष्टि, कभी अनावृष्टि, रोगों से हो रहे ग्रस्त हैं ।
अनिश्चितता के इस आलम को, जग में कान्हा तोड़ दो,
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....

भरतखण्ड में आसुरी प्रवृतियां होने लगी है हावी,
लोगों को सत्य से भटकाने में हो रहे अधिक प्रभावी ।
सफेदपोशों के दुष्कृत्यों को कर उजागर छोड़ दो,
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....

जगत रूपी गुलशन में अमन का, आज पतन है हो रहा,
सरेआम समझकर जिन्दा लाश, उसका दफन है हो रहा ।
करो कल्याण जगत का कान्हा, बीच मंझधार न छोड़ दो,
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....

नहीं कोई अर्जुन इस देश में जो गांडीव संघान करे,
देश के दुश्मन को बाणों से कर प्रहार वो प्राण हरे ।
उठाओ चक्र सुदर्शन कान्हा, कमर शत्रु का तोड़ दो,
बहुत बजायी मुरली कान्हा .....
देश विरुद्ध जो वह रही धारा .....

---------o--------

भक्ति भजन -1

प्रस्तुत भजन कष्टकर कोरोना-काल के वक्त लिखा गया था। घरों में बंद परमात्मा को याद और आत्मशुद्धि करने के सिवा कोई मार्ग नहीं रह गया था। ईश्वर, जो करुणा के सागर हैं, निश्चित रूप से मानव समुदाय को इस दुरूह स्थिति से बहार निकालेगें।

प्रभु भजन की सरिता में वह रही अमृत की धार,
गोता एक लगा लो भक्तों, होगा बेड़ा पार ।
प्रभु भजन की सरिता में .....

करुनानिधान हैं प्रेम-सिंधु, और हम केवल एक बिंदु,
आयें, भजन की सरिता में वह, पहुँच जाएँ हम सिंधु ।
कर सर्वस्व समर्पण प्रभु में, हो जाएँ एकाकार,
प्रभु भजन की सरिता में .....
गोता एक लगा लो भक्तों .....

तज सभी चिंताओं को हम, करें प्रभु का चिन्तन,
हो परिस्थिति चाहे भी कैसी, करें सदा ही वंदन ।
परम-प्रभु चिन्मय ही करेगें, बेड़ा सबका पार,
प्रभु भजन की सरिता में .....
गोता एक लगा लो भक्तों .....

मंदिर बंद हैं, मस्जिद बंद हैं, बंद गिरिजा, गुरूद्वारे,
बंद घरों में भक्ति-भजन की, वह रही निर्मल धारें ।
भक्ति-भजन एकमात्र मार्ग, पाने को प्रभु का द्वार,
प्रभु भजन की सरिता में .....
गोता एक लगा लो भक्तों .....

जीवन की नैया आज अथाह, सागर में रही है डोल,
उठते ज्वार-भाटा में नौका ले रही हिचकोल ।
हों निष्काम, रहें पकड़े हम, भक्ति अनन्य की डार,
प्रभु भजन की सरिता में .....
गोता एक लगा लो भक्तों .....

वर्तमान में छाया है प्रकोप प्रचंड प्रकृति का,
स्पष्ट नहीं कुछ दिख रहा, भविष्य के आकृति का ।
करें प्रभु-भजन, न डूबने देगें, हमें बीच मंझधार,
प्रभु भजन की सरिता में .....
गोता एक लगा लो भक्तों .....

---------o--------

भक्ति भजन -2

अपने लिए जिए हम अबतक, परहित की अब बारी है,
लिपटे रहे सकाम में अबतक, अब निष्काम की बारी है ।
अपने लिए जिए हम अबतक .....

दो और दो पाँच करने में, जीवन अबतक गुजर गया,
सच पर कोई आँच न हो, इसके लिए वह ठहर गया ।
अनुरक्त रहे हम स्वार्थ में, अब परमार्थ की बारी है,
अपने लिए जिए हम अबतक .....

भौतिकता के मोह-जाल फँस, जीवन सारा बीत गया,
यह मेरा है, मुझे और मिले, इसी में पल-पल बीत गया ।
सेवा भाव जगा मन में अब जनकल्याण की बारी है,
अपने लिए जिए हम अबतक .....

पता नहीं किस शोहरत पर होता मनुष्य को नाज है,
जबकि आखिरी सफर में वह औरों पर मोहताज है ।
मद का मर्दन कर अब तो प्रभुशरण जाने की बारी है,
अपने लिए जिए हम अबतक .....

राग, द्वेष के द्वन्द से जीवन भर ना हुए हम मुक्त,
उलझे रहे द्वंदों में हीं, क्या गलत? क्या उपयुक्त ?
अनासक्त हों, रख समभाव, जिससे द्वंद सब हारी है,
अपने लिए जिए हम अबतक .....

त्रिगुणमयी माया ईश्वर की जिसको पार न पाया,
जितना किया प्रयास उसी में उतना उलझा पाया ।
मन को करके पूर्णतः शांत, समर्पण पूर्ण की बारी है,
अपने लिए जिए हम अबतक .....

ज्ञान और अज्ञान अवस्थित, दोनों अपने तन में,
तजकर ज्ञान, अज्ञान समेटे, बढ़ते रहे जीवन में ।
बहुत रहे अज्ञान के जद में, अब ज्ञान की बारी है,
अपने लिए जिए हम अबतक .....

खुद पर कर विश्वास, रखकर ईश्वर में पूर्ण आस्था,
मंजिल ओर आगे बढ़ें, निकलेगा निश्चित रास्ता ।
मैं का प्रभुत्व हटाकर उसपर हम को करना भारी है,
अपने लिए जिए हम अबतक .....

---------o--------

जीवन

जीवन सदैव एक समर है,
आसान न इसका डगर है ।
सशक्त हो, जो भीड़ गया,
सुगम उसी का सफर है ।

जीवन सदा एक युद्ध है,
पग-पग पर बाधा क्रुद्ध है ।
हिम्मत रख, जो पार किया,
कहलाता वही प्रबुद्ध है ।

जीवन में पतझड़ आयेगें,
सुख, पत्ते सा झड़ जायेगें ।
तरुवर सा फिर, रह सुदृढ़,
सुख, पत्ते सा फिर आयेगें ।

शूलों से भरा पथ, ये जीवन,
हर कदम पर होगा चुभन ।
बगैर तपे तो सोना भी,
बन नहीं पाता है कंचन ।

जीवन में जो कुछ प्राप्त है,
समझो उसे ही पर्याप्त है ।
बहुत अधिक की आकांक्षा से,
जीवन हो जाता समाप्त है ।

जीवन एक निष्काम सफर,
सकाम हुए, भटके डगर ।
शीत-उष्ण, सुख-दुख रह सम,
परम-लक्ष्य को बढ़ पथ पर ।

जीवन एक सतत निर्झर,
बहता ऊबड़-खाबड़ समतल ।
रुके बिना कभी पल-भर,
फैलाती परिमल भूतल ।

जीवन है एक आत्मविश्वास,
सदैव कायम रहे अपने पास ।
हर मुश्किल पल का साथी,
तनिक न होने पाये ह्रास ।

जीवन एक संकल्प है,
इसका न कोई विकल्प है ।
डरकर नहीं, डटकर रहें,
मुश्किल हो जाती अल्प है ।

जोवन तो वसंत बहार है,
पतझड़ माना, तो बेकार है ।
हर्ष-विषाद का एक संगम,
मरू, बहे ज्यों मृदुल वयार है ।

जीवन है एक सतत संघर्ष,
कभी अपकर्ष, कभी उत्कर्ष ।
जीवन पथ में आये जो भी,
स्वीकारो उसको सहर्ष ।

जीवन को रखें अनासक्त,
सकाम प्रति न हों आसक्त ।
इन्द्रियों पर कर नियंत्रण,
परमसुख को रहें आश्वस्त ।

---------o--------

पहचान

राम, कृष्ण या हजरत, ईशा, महावीर, बुद्ध, गुरुनानक,
दिशा दिखाकर जनमानस को, बन गए जगमें मानक ।

सदियोंतक इन श्रेष्ठ हस्तियों की, कीर्तियाँ अमर रहेगी,
रहेगी जबतक धरा-गगन यहाँ, इनकी पहचान रहेगी ।

इन महापुरुषोंका व्यक्तित्व, होगा प्रेरणास्रोत जीवन का,
समवेत एक स्वर में कहे, कर्म ही परिचय जीवन का ।

कर्मों की संचित निधि ही, दिलाती पहचान मर्त्यलोक में,
आँकलन करके ईश्वर जिसे, देते फल सदैव परलोक में ।

वर्षों तक जग में रहे मनुष्य, छोड़े तुम क्या पहचान ?
बेबाक वाक्य तो बोलेगें ही, तेरे किये कर्मों के निशान ।

तेरी अर्जित कीर्तियाँ वयां करेगी, थे काँच या थे हीरा,
केवल सफेद चमकीले पत्थर, या नूर का एक जखीरा ।

भू पर आपके कर्म कितनों की, दशा, दिशा है बदली,
कितनों के सिर परसे आपने, काटी संकट की बदली ।

ज्ञान विसर्जित किये जो जगमें, कितना था वह परिपक्व,
कितने मार्गदर्शित हुए पाकर, उस दिए ज्ञान के तत्व ।

दूर धरा पर फैली कितनी, आपके सुकृत्यों की सौरभ,
कितनों के जीवन में बढ़ाये, इस जग में उसके गौरव ।

सुकर्म, कुकर्म निर्धारित करते, यश-अपयशके अफसाने,
कर्मानुसार फल मिलेगा आपको, ये तो केवल रब जाने ।

पर सत्य यही है, सत्य कर्मों की, होती है जग में कद्र,
अपकर्म दिलाते अपयश आपको, सुनें जगत के भद्र ।

जैसा कर्म करेगें जग में, आपकी बनेगी वैसी पहचान,
सत्कर्म तो होगें अच्छे इंसान, अपकर्म बनायेगें हैवान ।

---------o--------

क्रोध

भगवान श्रीकृष्ण ने क्रोध को कहा नर्क का द्वार,
अतिशय अंतर में स्थित तो, उजड़ जाता संसार ।
भगवद गीता में भगवान ने क्रोधका किया बयान,
नहीं नियंत्रण रहने पर यह देता असीम नुकसान ।

इसलिए मनुष्य रक्खे सदैव, इसको नियंत्रित स्थिर,
परिस्थिति अनुकूल या प्रतिकूल, रहे क्रोध सुस्थिर ।
स्थिरचित्त मनुष्य वही, जो सुख-दुखमें रहता सम,
भय और क्रोध से मुक्त हो, अविचिलित हर दम ।

क्रोध मतलब खुद अपने ही, घर में आग लगाना,
पहले स्वयं जलना और, फिर दूसरों को जलाना ।
क्रोध सदैव हानिकारक, कायरता का एक चिन्ह,
अमनचैन लेता यह लील, जब करते हैं अनचिन्ह ।

व्यक्ति में जब क्रोध, सोच-समझ की क्षमता लुप्त,
प्रवेग होता अतिप्रबल और चेतना हो जाती सुप्त ।
इसके वशीभूत हो जाने पर, स्वयं को जाते भूल,
और संपन्न किये कृत्यों से, पथमें बिछ जाते शूल ।

मनुष्य जब आता जगत में, होता बस एक इंसान,
डर, भय, क्रोध क्या होता, उसकी न उसे पहचान ।
शनैः शनैः परिस्थिति से, होता जब उसका सामना,
जैसा वह अनुभव करता, होती अंतर वैसी भावना ।

जब कोई न सुनता उसकी, चलता न उसकी चाल,
अंतर दबा स्फुलिंग क्रोध का, बनने लगता ज्वाल ।
लगता जब कभी मनुष्य को, किया जारहा उपेक्षित,
क्रोध जागृत होने लगता, महसूस कर अपमानित ।

जब पूर्ण न होती मनुष्यकी, उसकी अपनी इच्छा,
और सही समय का वह, कर पाता नहीं प्रतीक्षा ।
तब अपूर्ण इच्छाही मनुष्य को, वेचैन करने लगता,
और स्वतः उसके अंतर में, क्रोध पनपने लगता ।

अंतर में स्थित अहंकार भी, होता क्रोध का कारण,
घरेलु, वित्तीय कारण से भी, क्रोध को करता धारण ।
बढ़ते काम के बोझ से भी, क्रोध कभी बढ़ जाता,
तनावपूर्ण होते सम्बन्ध भी, क्रोध का कारण बनता ।

मनुष्य के मत के विरुद्ध भी, होता जब कोई काम,
स्वतः ही आंतरिक क्रोध तब, चढ़ने लगता आसमान ।
अतीत घटी घटना भी, कभी क्रोध का कारण बनता,
सत्यको तज वह अपने, स्वार्थानुसार व्याख्या करता ।

भगवद गीता में क्रोध का, बताया गया गूढ़ विज्ञान,
जीवन बदल सकता तब, जब दें हम उसपर ध्यान ।
इन्द्रिय-विषयों का चिंतन, मनुष्य जब करने लगता,
उन विषयोंमें आसक्ति तब, मनुष्य का बढ़ने लगता,

आसक्ति जब बढ़ती तब, पाने की लालसा बढ़ती,
और हरपल अंदर में वह, बढ़ती ही चलती जाती ।
जब उसके पाने के पथ में, विघ्न कोई तब आती,
तब अंतरमें स्वतः ही, क्रोध अंकुरित होने लगती ।

फिर सिफर से शिखर तक, पलमें ही चढ़ जाती,
और प्राप्ति हेतु तब धैर्य, देने जबाब लग जाती ।
अधिक क्रोध से नर में, मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता,
जिसके कारण स्मृतिमें उसके, भ्रम सृष्ट हो जाता ।

और स्मृतिमें भ्रम होनेसे, बुद्धिका नाश हो जाता,
बुद्धि नाश होने का मतलब, ज्ञान नाश हो जाता ।
विचार करने की शक्ति, उसमें शेष नहीं रहती,
और मनुष्य का जीवन, पतनके मार्ग चल पड़ती ।

स्पष्ट है क्रोध मनुष्य की, बुद्धि को हर है लेता,
नर विवेकहीन हो जाता, शूल पथमें बिछ जाता ।
सोच हमारी हम ही सबसे, समझदार, बुद्धिमान,
जग में कोई हमको, नहीं समझ सकता इंसान ।

यह सोच मनुज को बर्बादी के, पथपर ले जाएगी,
गुस्सैल बनाकर आपको वह, समंदर डूब-बायेगी ।
आपसे पद और पैसे में, होता जो कोई कमजोर,
उसी के ऊपर आपका, गुस्सा बरसता अति घोर ।

अति क्रोधमें ह्रदय गति और रक्तचाप बढ़ जाता,
उसकी निरंतरता तन पर, बुरा प्रभाव कर जाता ।
कम या जायदा क्रोध तो, हर किसी को है आता,
अनियंत्रित क्रोध सदैव हमारा काम विगाड़ जाता ।

मनुष्य का जो यह तन है, वो पंचतत्व से निर्मित,
मन, बुद्धि, अहंकार संग, अष्ट अपरा प्रकृति स्थित ।
चेतना आती जब स्थूल तनमें, तभी आता है प्राण,
और मनुष्य को जगत में, मिलती उसकी पहचान ।

इसलिए हमारा मन होता है, उसी ओर आकर्षित,
जिधर होते भौतिक पदार्थ, इन पंचतत्वों से सृजित ।
जगत में हरकोई भागता, अपने मूलतत्व की ओर,
इसी क्रम में परा प्रकृति से, छूट जाता निज डोर ।

भौतिक पदार्थोंकी प्राप्तिमें, आता जब कोई अड़चन,
तब क्रोधरूपी मनोविकार का, अंतर में होता सृजन ।
क्रोधकी हालत में होती है, अपरिमित ऊर्जा उत्पन्न,
रही अगर यह अनियंत्रित तो, कर देगी हमें दफन ।

क्रोध जब होता बेलगाम तब, खोलता नर्क का द्वार,
पतन की शीर्षस्थ अवस्था, ले जाता यह मनोविकार ।
क्रोध में उत्पन्न ऊर्जा को, अगर कर सके नियंत्रित,
पाकर उसपर विजय हम, कर देते उसे व्यवस्थित ।

निश्चित रूप से मनुष्य को, तब शक्ति करता प्रदान,
बड़े-बड़े विघ्नोंको काटने में, करता यह राह आसान,
जैसे जल-सैलाब को जब, रास्ता देते हम नहर बना,
भूमि को हरा भरा करवो, सुखी-संपन्न हमें देते बना ।

जब श्रीराम, सिंधु से सेतुको, रास्ता एक माँग रहे थे,
और समुद्र उसे अनसुना कर, भाव नहीं दे रहे थे ।
तब प्रभु श्रीराम को अंततः, क्रोध ही करना पड़ा था,
और सठ उस समुद्र को फिर, हटना पीछे पड़ा था ।

सठ दुर्योधन जब श्रीकृष्ण को, चाहा था बंदी बनाना,
क्रोधित होकर उनको पड़ा था, भीषण रूप दिखाना ।
महादेव क्रोधित होने पर ही, चण्डताण्डव हैं करते,
और अरिमर्दन को माँ जगदम्बा, काली रूप हैं लेते ।

संतुलित मात्रामें क्रोध होता, एक हद तक आवश्यक,
अत्याचार के विरुद्ध लड़नेकी, शक्ति देता आवश्यक ।
निजी जीवन में क्रोध न हो तो जीवन होजाता स्वर्ग,
परमसुख होता तब प्राप्त, जब करते इसका उत्सर्ग ।

इच्छा और आवश्यकता में मनुष्य जाने करना फर्क,
मनके ऊपर नहीं पड़ने दे असीम इच्छाओं का पर्त ।
शिखर पर चढ़ती इच्छाएं, सदा कर देती बेड़ा गर्क,
क्रोध के होकर बशीभूत मनुष्य, गिरता पतन के गर्त ।

आसक्ति-रहित होकर करें, संपन्न सभी अपने कर्म,
तब उत्पन्न निष्काम भाव, सीखा देगी जीवनका मर्म ।
इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों पर, रखें सम्पूर्ण नियंत्रण,
क्रोध आपतक पहुँच न पायेगा, जबतक है ये जीवन ।

---------o--------

कवि परिचय

अरविन्द कुमार का जन्म बिहार राज्य के जिला नालंदा के अंतर्गत एक छोटे से ग्राम, घोसी में हुआ। इन्होंने स्नातक सिविल अभियंत्रण में की और साथ में स्नातकोत्तर डिप्लोमा "वित्तीय प्रबन्धन" में किया। इन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन एक सिविल इंजीनियर के रूप में जिया है। अपने सर्विस के दौरान देश-विदेश का काफी भ्रमण किया है। इन्हें साहित्यिक और आध्यात्मिक किताबें को संग्रह करने और पढ़ने में बहुत रुचि प्रारम्भ से ही रही है। हिंदी भाषा में कविता लिखने में रुचि बचपन से ही रही है जो शनैः शनैः इनके जीवन का एक अंग बन गयी है। पहले ही इनकी तीन किताबें श्रीमद् भगवद् गीता (सरल हिन्दी कविता में), श्रीमद् भगवद् गीता (चौपाई (हिन्दी कविता) में) और यादें प्रकाशित हो चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक "आध्यात्मिक कविताएं" एक हिन्दी कविता संग्रह है जिसमें अध्यात्म के बुनियादी मुख्य अवयवों (जैसे-अध्यात्म, आत्मा, आत्मज्ञान आदि)को कविता के रूप में वर्णन करने प्रयास किया गया है।